॥ श्रीहरिः ॥

भगवान राम

[भाग १]

गीताप्रेस, गोरखपुर

ॐ

निवेदन

हमारे बालकोंको अपने पूर्वज महापुरुषोंके जीवनके सम्बन्धमें जानकारी रहे, इसी उद्देश्यसे 'भगवान राम' नामक यह पुस्तक छोटे-छोटे दो भागोंमें सचित्र प्रकाशित की जाती है। यह पहला भाग है। इसे पढ़नेसे बालक-बालिकाओंको रामके चरित्रकी जानकारी तो होगी ही, साथ ही उनके चरित्रसे शिक्षा भी प्राप्त होगी। इसमें प्रत्येक अध्यायमें रामचरितमानस-की उसी प्रसङ्गकी चुनी हुई चौपाइयाँ और दोहे दिये गये हैं। इससे भाषाज्ञानके साथ ही मानसके प्रसङ्गोंका भी ज्ञान होगा तथा बालकोंके लिये यह रुचिकर भी होगा। इसमें जो बातें लिखी गयी हैं, सभी रामायणके आधारपर लिखी गयी हैं। हमारे बालक-बालिका इससे लाभ उठावें, यही निवेदन है।

विनीत—

प्रकाशक

श्रीहरिः

विषय-सूची

चित्र-सूची

बालक राम

श्रीहरिः

भगवान राम

[प्रथम भाग]

अवतारका कारण

बात बहुत ही पुरानी है। समुद्रमें लंका नामका एक द्वीप था और उस द्वीपमें राक्षसोंका राजा रावण अपने राक्षसोंके साथ रहता था। रावणके दस मुख और बीस हाथ थे। रावण तथा दूसरे राक्षस भी बहुत बलवान थे और जैसा मनमें आता, वैसा ही रूप बना सकते थे। राक्षस बड़े अन्यायी और पापी थे। राक्षसोंके राजा रावणने उन्हें आज्ञा दे रखी थी कि कोई पूजा-पाठ न करने पावे। कोई देवताओंकी

पूजा करता तो राक्षस उसे मार डालते थे या तंग करते थे। गाँवोंमें या ऋषियोंके आश्रमोंमें अग्नि लगा देते थे। वे सभी प्राणियोंको बिना अपराध ही सताया करते थे।

दूसरोंको सताकर भला कोई कबतक सुखी रह सकता है ? पापका फल दुःख होता है और जो बहुत अधिक पाप करता है, उसका विनाश निश्चित होता है। जब रावणका अत्याचार बहुत बढ़ गया, तब देवताओंको बड़ा कष्ट हुआ। रावणने कठोर तपस्या करके सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीसे वरदान प्राप्त कर लिया था कि मनुष्य और बंदरोंको छोड़कर दूसरे किसीके हाथसे वह मारा नहीं जायगा। मनुष्य और बंदरोंको तो वह बहुत दुर्बल समझता था, इससे उसने उनके हाथसे मरनेकी बात सोची ही नहीं। रावणके अत्याचारसे पृथ्वी घबरा उठी, देवता दुखी हो गये। वरदानके प्रभावसे देवता रावणको मार तो सकते नहीं थे, इसलिये वे गाय बनी हुई पृथ्वीको

साथ लेकर ब्रह्माजीके पास गये। ब्रह्माजीने देवताओंसे बताया कि 'भगवान ही सभी दुःखोंको दूर कर सकते हैं।' देवता सोचने लगे कि भगवान कहाँ मिलें जो उनसे प्रार्थना की जाय। कोई क्षीरसागर चलनेकी बात कहता तो कोई वैकुण्ठ। वहाँ शंकरजी भी थे। उन्होंने कहा—

'भगवान इस प्रकार ढूँढ़नेसे नहीं मिला करते। वे तो सर्वव्यापक हैं। ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ भगवान न हों। लेकिन जो सच्चे प्रेमसे पुकारता है, उसीके सामने वे प्रकट होते हैं।'

श्रीशंकरजीकी यह बात देवताओंको सच्ची जान पड़ी। ब्रह्माजी, शंकरजी और सभी देवताओंने भगवानकी बड़े प्रेमसे प्रार्थना की। देवताओंकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर भगवानने आकाशवाणीमें कहा कि 'मैं अयोध्याके चक्रवर्ती महाराज दशरथके घर प्रकट होऊँगा और रावणको मारकर देवताओंका

कष्ट दूर करूँगा।' इसपर ब्रह्माजीने यह आज्ञा दी कि सब देवता अपने-अपने अंशसे बंदर और भालुओंके यहाँ जन्म लें। देवताओंने ब्रह्माजीकी आज्ञा सिर चढ़ायी। भगवान श्रीरामने जब रावणसे युद्ध किया तब जो बंदर तथा भालु भगवानकी सेनामें थे, वे सब देवताओंके अंशसे ही उत्पन्न हुए थे।

गिरि त्रिकूट एक सिंधु मझारी। बिधि निर्मित दुर्गम अति भारी॥
सुंदर सहज अगम अनुमानी। कीन्हि तहाँ रावन रजधानी॥
करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया॥
जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं वेद प्रतिकूला॥
बैठे सुर सब करहिं बिचारा। कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा॥
जाके हृदयँ भगति जसि प्रीती। प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहिं रीती॥
हरि व्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

सुनि बिरंचि मन हरष तन पुलकि नयन बह नीर।
अस्तुति करत जोरि कर सावधान मतिधीर॥
जानि सभय सुर भूमि सुनि बचन समेत सनेह।
गगनगिरा गंभीर भइ हरनि सोक संदेह॥

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर वेसा॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा॥

भगवान श्रीरामका अवतार

उत्तर-प्रदेशके फैजाबाद जिलेमें आज ज
अयोध्या है, वहीं सरयू नदीके तटपर प्राच
अयोध्यापुरी थी। वह अयोध्यापुरी आजकी अयोध्य
बहुत बड़ी थी, क्योंकि सूर्यवंशी क्षत्रिय नरेशों
वह प्राचीन राजधानी थी। उस समय महारा
अजके पुत्र चक्रवर्ती महाराज दशरथ अयोध्या
राजा थे। महाराज दशरथके तीन रानियाँ थीं
सबसे बड़ी महारानी कौसल्या, दूसरी महारा
सुमित्रा और सबसे छोटी महारानी कैकेयी थीं

महाराज दशरथ लगभग बूढ़े हो चले थे, किंतु उनके कोई पुत्र नहीं था। एक दिन महाराजने अपने कुलगुरु महर्षि वसिष्ठके आश्रममें जाकर गुरुदेवसे संतानके लिये प्रार्थना की। यज्ञ और भगवानकी पूजामें इतनी शक्ति है कि उसे कोई सोच ही नहीं सकता। लेकिन यज्ञकी विधि और मन्त्रोंको ठीक-ठीक जानकर करानेवाले बड़ी कठिनाईसे मिलते हैं। जबतक कोई भी काम ठीक विधिसे न हो, उसका फल कैसे मिल सकता है। महर्षि वसिष्ठजीने शृङ्गी ऋषिको बुलवाया। शृङ्गी ऋषिने आकर महाराज दशरथसे पुत्र-प्राप्तिके लिये यज्ञ करवाया। जब विधिपूर्वक यज्ञ पूरा हुआ, तब पूर्णाहुतिके समय यज्ञकुण्डमेंसे चम-चम चमकते हुए अग्निदेवता मनुष्यका-सा रूप धारण करके प्रकट हो गये। अग्निदेवने महाराज दशरथको एक कटोरेमें खीर दी और कहा—'महाराज! यह खीर आप रानियोंको बाँट दीजिये। इससे रानियोंको पुत्र होंगे।'

खीर देकर अग्निदेव फिर अग्निकुण्डमें अदृश्य हो गये ।

महाराज दशरथने खीरका आधा भाग बड़ी महारानी कौसल्याजीको दे दिया । बचे हुए आधे भागका आधा करके एक भाग महारानी कैकेयीजीको दिया । अब जो चौथाई खीर बची, उसके दो भाग करके एक कौसल्याजीको तथा दूसरा कैकेयीजीको देकर सुमित्राजीको देनेके लिये कह दिया । कौसल्याजी तथा कैकेयीजीने वे भाग सुमित्राजीको दे दिये । इस प्रकार सुमित्राजीको भी चौथाई खीर दो भागोंमें बँटकर मिल गयी ।

भगवान किसीके गर्भसे जन्म नहीं लेते, लेकिन लीला ऐसी करते हैं, जिससे मालूम पड़ता है बालकने जन्म लिया है । इसीसे लोग भ्रममें पड़कर भगवानको मनुष्य समझने लगते हैं । महाराज दशरथजीकी तीनों रानियोंको ऐसा ज्ञान

पड़ा कि वे गर्भवती हो गयी हैं। चैत्र शुक्लपक्षकी नवमीको आजकल भी रामनवमी मनायी जाती है; क्योंकि इसी दिन ठीक दोपहरके समय भगवान श्रीराम प्रकट हुए थे। माता कौसल्याजीके सामने शङ्ख, चक्र, गदा, कमल लिये चतुर्भुजरूपमें भगवान प्रकट हो गये। भगवानका शरीर परम सुन्दर मोरके कंठ-जैसे हरियाली मिले हुए चमकते हुए नीले रंगका था। वे पीताम्बर पहने हुए थे। कंधेपर पीला बिजली-जैसा चमकता दुपट्टा था। सिरपर रत्नोंसे जड़ा मुकुट चमचमा रहा था, कानोंमें रत्नोंके कुण्डल थे, गलेमें वैजयन्ती माला थी। हाथोंमें कंकण तथा बाजूबंद थे। कमरमें सोनेकी मणियोंसे जड़ी करधनी और चरणोंमें नूपुर थे। भगवानके शरीरके दिव्य प्रकाशसे पूरा महल जगमगा रहा था।

माता कौसल्याने अपने सामने चतुर्भुज रूपधारी साक्षात् भगवानको देखा तो वे चकित हो गयीं।

रा० भाग १] भगवान् प्रकट हो गये [पृष्ठ १२

दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने भगवानकी स्तुति की। भगवान बोले—'माँ! तुम पहले देवमाता अदिति थीं और महाराज दशरथ कश्यप ऋषि थे। आप दोनोंने बहुत दिनोंतक कठोर तपस्या करके मुझे प्रसन्न किया और मुझे पुत्ररूपमें पानेका वरदान माँगा था। मैं अब इसीलिये तुम्हारा पुत्र होकर प्रकट हुआ हूँ।'

माता कौसल्याने प्रार्थना की—'भगवन्! यदि आप मेरे पुत्र होकर प्रकट हुए हैं तो अपना यह चतुर्भुजरूप छिपा लीजिये और बच्चे बन जाइये, जिससे मुझे आपको पुत्रके रूपमें पानेका सुख मिले।' माताके यह कहते ही वस्त्र, आभूषण, शङ्ख, चक्र आदि तो अदृश्य हो गये और भगवान नन्हे-से शिशु बनकर माताकी गोदमें आ गये।

महाराज दशरथको पुत्र-जन्मका समाचार मिलनेसे बड़ा आनन्द हुआ। राजमहलमें तथा पूरे

नगरमें उत्सवोंकी धूम मच गयी । दूसरे दिन दशमीको छोटी रानी कैकेयीजीको भी कौसल्याजीके समान ही नीले रंगके सुन्दर पुत्रकी प्राप्ति हुई और फिर सुमित्राजीको गोरे रंगके अत्यन्त सुन्दर दो जुड़वें पुत्र हुए । नामकरणके समय महर्षि वसिष्ठजीने माता कौसल्याके लालाका नाम श्रीराम रखा । श्रीकैकेयीजीके पुत्रका नाम भरत और सुमित्राजीके बड़े कुमारका नाम लक्ष्मण तथा छोटे कुमारका नाम शत्रुघ्न रखा ।

नौमी तिथि मधु मास पुनीता । सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता ॥
दसरथ पुत्र जन्म सुनि काना । मानहुँ ब्रह्मानंद समाना ॥
कैकयसुता सुमित्रा दोऊ । सुंदर सुत जनमत भैं ओऊ ॥
जो आनंद सिंधु सुख रासी । सीकर तें त्रैलोक सुपासी ॥
सो सुख धाम राम अस नामा । अखिल लोक दायक बिश्रामा ॥
बिस्वभरन पोषन कर जोई । ताकर नाम भरत अस होई ॥
जाके सुमिरन तें रिपु नासा । नाम सत्रुहन बेद प्रकासा ॥

लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार ।
गुरु बसिष्ट तेहि राखा लछिमन नाम उदार ॥

बालक्रीड़ा और शिक्षा

संसारमें जितनी सुन्दरता, ज्ञान, बल, बुद्धि और अच्छे गुण हैं, वे भगवानसे ही आये हैं इनके अटूट और अपार भंडार तो भगवान ही हैं भगवान श्रीरामकी सुन्दरताका कोई कैसे वर्णन क सकता है। छोटे-छोटे चारों राजकुमार थोड़े दिनों राजभवनमें घुटनोंके बल सरकने लगे। माताएँ महाराज तथा दूसरे सभी लोग उन कुमारोंक बाल-छबि देख-देखकर प्रसन्न होते थे। बह

छोटेपनसे ही लक्ष्मणजी श्रीरामके तथा शत्रुघ्नजी भरतके साथ रहने लगे । कुछ और बड़े होनेपर चारों राजकुमार खड़े होकर चलने लगे और धीरे-धीरे खेलने भी लगे । अयोध्याके सभी बालक उनसे मित्रता करके परम सुखी होते थे । श्रीराम खिलौने, वस्त्र, आभूषण अपने मित्रोंको बाँट दिया करते थे । खेलमें वे सदा यही चाहते थे कि 'मैं भले हार जाऊँ, परंतु मेरे मित्र तथा भाई जरूर जीतें ।' श्रीभरतजी जब स्वयं हार जाते थे और श्रीराम विजयी होते थे, तब बहुत प्रसन्न होते थे, किंतु जब वे स्वयं जीतते थे, तो उन्हें बड़ा संकोच होता था । तीनों भाई श्रीरामकी सेवा करते और उन्हें प्रसन्न करनेकी ही चेष्टा सदा किया करते थे और श्रीराम सदा भाइयोंको सुख पहुँचाने और प्रसन्न रखनेका ही प्रयत्न करते थे ।

नगरके लोग राजकुमारोंको अपने प्राणोंके समान प्यार करते थे । राजकुमार बालक होनेपर

भी, नगरके लोगोंमें जो जैसे बड़े आदरणीय थे, उनका उसी प्रकार आदर करते थे। वे बड़ोंको नम्रतासे प्रणाम करते थे। प्रजाके लोगोंको पुरस्कार बाँटते थे और सबको प्रसन्न करते थे। छः वर्षकी अवस्था होते ही राजकुमारोंका यज्ञोपवीत-संस्कार हो गया और वे कुलगुरु महर्षि वसिष्ठजीके आश्रममें पढ़नेके लिये चले गये।

उन दिनों आजकलकी भाँति स्कूल-कॉलेज नहीं थे। विद्यार्थीको बड़े संयम-नियमसे रहकर गुरुदेवकी सेवा करनी पड़ती थी। कमरमें मूँजकी एक रस्सी बँधी रहती थी और उसमें कौपीन लगायी जाती थी। बिछाने या कंधेपर रखनेको एक मृगछाला रहती थी। बस, इतने ही कपड़े रहते थे। जबतक शिक्षा समाप्त न हो जाय, न बाल बनवाये जाते थे, न नख कटवाये जाते थे और न शरीर या सिरमें तेल ही लगाया जाता था। विद्यार्थी जमीन-पर सोते थे। हाथमें पलाशका डंडा रखते थे।

प्रातःकाल सब सूरज उगनेसे एक घंटे पहले उठकर शौच, स्नान, संध्या तथा हवन करते थे। दोपहर तथा सायंकाल भी संध्या और हवन करना पड़ता था। गुरुदेवका आश्रम नगरसे दूर वनमें होता था। आश्रममें झाड़ू देना, लीपना, जल, कुश, फूल तथा हवनके लिये लकड़ियाँ लाना, यह सब काम विद्यार्थी ही करते थे। विद्यार्थी एक समय नगर या ग्रामोंसे भिक्षा माँगकर ले आते और गुरुदेवके सामने रख देते थे। उसमेंसे गुरुदेव जो दे देते थे, उसीको खाकर वे संतुष्ट रहते थे। इस प्रकार गुरुकी सेवा करते हुए गुरु-कृपासे जो विद्या प्राप्त होती थी, वह विद्या इस लोक और परलोकमें भी कल्याण करनेवाली होती थी।

गुरुदेवके आश्रममें धनी-दरिद्रके बालकोंमें कोई भेद नहीं होता था। सभी बालक समान भावसे ही रहते थे। भगवान श्रीराम तो सभी विद्याओं तथा ज्ञानके सागर हैं, लेकिन मर्यादा यही

है कि गुरुदेवकी सेवा करके ही विद्या प्राप्त करनी चाहिये, इसलिये भाइयोंके साथ श्रीराम छः वर्ष-की अवस्थामें ही यज्ञोपवीत होनेपर महर्षि वसिष्ठके आश्रममें आ गये और ब्रह्मचर्याश्रमके नियमोंका पूरा-पूरा पालन करते हुए गुरुदेवकी सेवा करने लगे। बहुत थोड़े दिनोंमें गुरुदेवके मुखसे सुनकर चारों वेद, चारों उपवेद, छः शास्त्र, वेदके छः अङ्ग, इतिहास, पुराण और सभी कलाएँ उन्होंने सीख लीं। गुरुदेवने राजकुमारोंको सब विद्याओंमें निपुण हुआ देखकर घर लौटनेकी आज्ञा दी। विधिपूर्वक गुरु-दक्षिणा देकर और समावर्तन-संस्कार कराके चारों राजकुमार राजधानीमें लौट आये।

बारेहि ते निज हित पति जानी। लछिमन राम चरन रति मानी॥
भरत सत्रुहन दूनउ भाई। प्रभु सेवक जसि प्रीति बड़ाई॥
बाल चरित हरि बहु बिधि कीन्हा। अति अनंद दासन्ह कहँ दीन्हा॥
भए कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता॥
गुरुगृहँ गए पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई॥

—

महर्षि विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा

महर्षि विश्वामित्र वनमें आश्रम बनाकर रहते
। वहाँ दूसरे और भी ऋषि-मुनि रहा करते थे।
र्षि विश्वामित्रजीके आश्रममें जब ऋषिलोग यज्ञ
ने लगते थे, तब मारीच और सुबाहु नामके
स अपनी राक्षसी सेनाके साथ यज्ञका धुआँ
कर ही दौड़े चले आते थे और हड्डी, केश,
, मूत्र, रक्त आदि अपवित्र वस्तुओंकी वर्षा करके
म तथा यज्ञस्थानको अपवित्र कर देते थे।

रीच और सुबाहु सगे भाई थे और ये ताड़का
क्षसीके पुत्र थे। इनकी माता ताड़का भी मुनियोंको
ड़ा कष्ट दिया करती थी। मारीच और सुबाहु रावणके
ख्य सेवक थे और उसकी आज्ञासे राक्षसी सेनाके
ाथ महर्षि विश्वामित्रके आश्रमसे कुछ ही दूर
ह्ते थे। ऋषियोंकी तपस्याके तेजसे डरकर ये
ाक्षस आश्रममें तो नहीं घुसते थे, किंतु यज्ञके
मय आकाशसे गंदी वस्तुएँ गिराकर यज्ञ नष्ट कर
ते थे।

महर्षि विश्वामित्र चाहते तो शाप देकर
ाक्षसोंको भस्म कर सकते थे, लेकिन क्रोध करनेसे
ापस्याका नाश हो जाता है, इसलिये उन्होंने शाप
ाहीं दिया। उन सर्वज्ञ ऋषिने जान लिया कि
भगवानने राक्षसोंका नाश करनेके लिये अयोध्यामें
अवतार धारण किया है। तब ऋषिने सोचा कि
'अयोध्या जानेसे भगवानके दर्शन भी होंगे और वे
दयामय मेरे साथ आकर इन दुष्ट राक्षसोंको नष्ट

भी कर देंगे ।' इसलिये वे अयोध्याको चल पड़े ।

अयोध्या पहुँचनेपर महाराज दशरथने महर्षि विश्वामित्रके चरणोंमें प्रणाम किया और उन्हें ऊँचे सिंहासनपर बैठाकर उनकी पूजा की। स्वागत-सत्कार हो जानेपर ऋषिने कहा—'महाराज! मुझे राक्षसलोग बहुत सताते हैं। उन दुष्टोंका नाश करानेके लिये मैं श्रीराम-लक्ष्मणको अपने साथ ले जाने आया हूँ। आप अपने दोनों कुमारोंको मेरे साथ भेज दीजिये।'

महाराज दशरथ बहुत चिन्तामें पड़ गये। प्राणोंसे प्यारे अपने पुत्रोंको राक्षसोंके साथ युद्ध करनेके लिये वे भेजना नहीं चाहते थे। उन्होंने बहुत प्रार्थना की और ऋषिसे सेनाके साथ स्वयं चलनेको भी कहा, परंतु विश्वामित्रजी तो श्रीराम-लक्ष्मणको ही लेने आये थे। महर्षि वसिष्ठजीने महाराजको समझाया कि 'ये विश्वामित्रजी बड़े प्रतापी तथा तपस्वी हैं। इनके साथ जानेपर राजकुमारोंको कोई कुछ नहीं कर

सकता। नहीं तो, क्रोध करके ये शाप देकर बहुत बड़ी हानि कर सकते हैं। इसलिये इनकी बात मान ही लेना उचित है।'

महाराज दशरथने गुरुदेवकी आज्ञा स्वीकार कर ली। इन्होंने दोनों राजकुमारोंको महर्षि विश्वामित्रजीके साथ जानेकी आज्ञा दे दी। पिताकी आज्ञा पाकर भगवान श्रीरामने माताके पास जाकर प्रणाम किया और उनसे भी आज्ञा ली। फिर कमरमें तरकस बाँधकर और कंधेपर धनुष रखकर छोटे भाई लक्ष्मणके साथ वे महर्षि विश्वामित्रजीके सङ्ग चल पड़े।

मारीच और सुबाहुकी माता ताड़का बड़ी भयानक राक्षसी थी। वह कोयले-जैसी काली और पर्वतके समान बड़े शरीरकी थी। उसके निवासस्थानके पाससे कोई भी आता-जाता दीख पड़ता तो वह उसे मारकर खा जाया करती थी। महर्षि विश्वामित्र तथा श्रीराम-लक्ष्मण जब ताड़कावनमें पहुँचे, तब उन्हें

देखते ही वह भयंकर राक्षसी जोरसे चिल्लाती हुई दौड़ पड़ी, लेकिन श्रीरामने बड़ी फुर्तीसे धनुषपर डोरी लगाकर एक बाण चढ़ाया और उससे तत्काल राक्षसीका मस्तक फोड़ दिया। बाण लगनेसे वह बड़े जोरसे चीत्कार करके जमीनपर गिर पड़ी और हाथ-पैर पीटकर मर गयी।

महर्षि विश्वामित्र श्रीरामके अद्भुत पराक्रमको देखकर बहुत प्रसन्न हुए। बड़ी भारी तपस्या करके महर्षिने बहुत-से दिव्य अस्त्र-शस्त्र प्राप्त किये थे। ये दिव्य अस्त्र कोई हथियार नहीं थे। मन्त्रका जप करते ही प्रकट हो जानेवाले अस्त्र थे। वे सब दिव्य अस्त्र उन्होंने श्रीरामको दे दिये, यानी मन्त्र तथा प्रयोग बतलाकर उन्हें प्रकट करके दिखा दिया। वहाँसे चलकर वे लोग महर्षि विश्वामित्रजीके आश्रममें आये। उस रात्रिको सबने विश्राम किया। दूसरे दिन श्रीरामने ऋषियोंको यज्ञ करनेके लिये कहा। ऋषिगण यज्ञ करने बैठे और लक्ष्मणजीके

साथ श्रीराम धनुष चढ़ाकर सावधानीसे खड़े होकर यज्ञकी रक्षा करने लगे ।

जैसे ही यज्ञका धुआँ आकाशमें दिखायी पड़ा, मारीच और सुबाहु अपने सभी राक्षस-सैनिकोंके साथ अस्त्र-शस्त्र लेकर चिल्लाते हुए आकाशमार्गसे दौड़े । श्रीरामने बड़ी भारी आँधीके समान आती हुई राक्षसी सेनाको देखा और एक बिना नोकका बाण मारीचको मारा । उस बाणकी चोटसे राक्षस मारीच सौ योजन दूर (चार सौ कोस दूर) समुद्रके किनारे जा गिरा । फिर एक और बाण चढ़ाकर अग्निका मन्त्र पढ़कर श्रीरामने छोड़ दिया । उस आग्नेयास्त्रकी लपटोंसे सुबाहु क्षणभरमें जलकर राख हो गया । जबतक श्रीरामने ये दो बाण छोड़े, इतनी ही देरमें श्रीलक्ष्मणने बाणोंकी ऐसी वर्षा की कि सेनाके सभी राक्षसोंके शरीर टुकड़े-टुकड़े हो गये। ऋषियोंके यज्ञका विघ्न सदाके लिये दूर हो गया ।

विस्वामित्र महामुनि ग्यानी । बसहिं बिपिन सुभ आश्रम जानी ॥
जहँ जप जग्य जोग मुनि करहीं । अति मारीच सुबाहुहि डरहीं ॥

खत जग्य निसाचर धावहिं । करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं ॥
ब मुनिवर मन कीन्ह बिचारा । प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा ॥
हूँ मिस देखौं पद जाई । करि बिनती आनौं दोउ भाई ॥

× × ×

सुर समूह सतावहिं मोही । मैं जाचन आयउँ नृप तोही ॥
नुज समेत देहु रघुनाथा । निसिचर बध मैं होब सनाथा ॥

× × ×

। सुत प्रिय मोहि प्रान की नाईं । राम देत नहिं बनइ गोसाईं ॥
। बसिष्ट बहु बिधि समुझावा । नृप संदेह नास कहँ पावा ॥

सौंपे भूप रिषिहि सुत बहु बिधि देइ असीस ।
जननी भवन गए प्रभु चले नाइ पद सीस ॥

े जात मुनि दीन्हि देखाई । सुनि ताड़का क्रोध करि धाई ॥
ाहि बान प्रान हरि लीन्हा । दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा ॥
रिषि निज नाथहि जियँ चीन्ही । बिद्यानिधि कहुँ बिद्या दीन्ही ॥

आयुध सर्ब समर्पि कै प्रभु निज आश्रम आनि ।
कंद मूल फल भोजन दीन्ह भगति हित जानि ॥

। कहा मुनि सन रघुराई । निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई ॥
करन लागे मुनि झारी । आपु रहे मख कीं रखवारी ॥
। मारीच निसाचर क्रोही । लै सहाय धावा मुनि द्रोही ॥
फर बान राम तेहि मारा । सत जोजन गा सागर पारा ॥
क सर सुबाहु पुनि मारा । अनुज निसाचर कटकु सँघारा ॥

श्रीजानकी-स्वयंवर

उन दिनों साधारण लोगोंके विवाह तो आजके समान ही विधिपूर्वक होते थे, किंतु राजकन्याओंके विवाहके लिये स्वयंवरकी प्रथा भी थी। स्वयंवर भी दो प्रकारका होता था। एक प्रकारके स्वयंवरमें तो आये हुए राजकुमारोंमेंसे किसीके गलेमें राजकन्या जयमाला डाल देती थी और उसीके साथ उस राजकन्याका विवाह कर दिया जाता था। दूसरे प्रकारका स्वयंवर ऐसा होता था कि राजकुमारीका पिता कोई प्रतिज्ञा करता था। उस प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेवालेके साथ ही राजकुमारीका विवाह होता था।

उन दिनों मिथिला देशके नरेश थे—महाराज सीरध्वज जनक। इनकी राजधानी मिथिला नगरी थी, जिसका दूसरा नाम जनकपुर है। एक बार मिथिलामें अकाल पड़ा था। ऋषियोंके आदेशसे वर्षाके लिये महाराज जनकने यज्ञ करनेका निश्चय किया। यज्ञभूमिको सोनेके हलसे स्वयं यजमान

जोते, ऐसी विधि है। महाराज जनक जब यज्ञभूमि जोत रहे थे, तब हलकी नोक लगनेसे भूमिसे एक परम सुन्दरी कन्या प्रकट हो गयी। हलकी नोकको संस्कृतमें 'सीत' कहते हैं। 'सीत'से निकलनेके कारण उस कन्याका नाम सीता पड़ा। महाराज जनकके पूर्वजोंको भगवान शंकरने अपना धनुष दिया था। वह धनुष महाराजके यहाँ रखा रहता था। महाराज उसकी प्रतिदिन पूजा करते थे। वह धनुष इतना भारी था कि उसे साठ बलवान पुरुष भी नहीं उठा सकते थे। कुछ बड़ी होनेपर एक दिन सीताजी सखियोंके साथ उस धनुषके पास खेल रही थीं। खेलते-खेलते उन्होंने वह धनुष एक ही हाथसे उठा लिया। जब यह समाचार महाराज जनकको मिला, तब उन्होंने प्रतिज्ञा की— 'जो कोई इस धनुषको तोड़ सकेगा, उसीके साथ मैं अपनी पुत्रीका विवाह करूँगा।'

महाराज जनककी प्रतिज्ञाकी सूचना देश-विदेशमें

कर दी गयी। ऐसी प्रतिज्ञाके स्वयंवरमें किसीको निमन्त्रण देकर बुलाया नहीं जाता। बलवान लोग स्वयं आते हैं। श्रीसीताजीके अपूर्व गुणोंकी तथा सुन्दरताकी प्रशंसा चारों ओर फैली ही थी। बहुत-से बलवान राजा तथा राजकुमार महाराज जनककी प्रतिज्ञा सुनकर जनकपुर आये। महर्षि विश्वामित्रजी जानते थे कि श्रीसीताजी साक्षात् जगज्जननी हैं, वे श्रीरामकी नित्यशक्ति हैं, श्रीरामसे ही उनका विवाह हो सकता है। अतएव जब श्रीराम तथा लक्ष्मणने मारीच, सुबाहु आदि राक्षसोंको मारकर यज्ञका विघ्न दूर कर दिया, तब महर्षि विश्वामित्रजीने उनसे कहा—'महाराज जनक अपनी पुत्रीका स्वयंवर कर रहे हैं। मेरी इच्छा है कि तुम दोनों भी मेरे साथ यह महोत्सव देखने वहाँ चलो।'

महर्षिकी आज्ञा स्वीकार करके दोनों भाई महर्षिके साथ मिथिलाके लिये चले। दूसरे कुछ ऋषि-मुनि भी साथ हो लिये। गङ्गाजीमें स्नान

करके जब ये लोग आगे गौतम ऋषिके आश्रममें पहुँचे, तब देखा कि उस आश्रममें कोई पशु-पक्षीतक नहीं है। केवल एक स्त्रीकी पत्थरकी मूर्ति पड़ी है। महर्षि विश्वामित्रने बताया कि यह गौतम ऋषिकी पत्नी अहल्या है, जो ऋषिके शापसे पत्थर हो गयी है। श्रीरामने महर्षिके कहनेसे अपने चरणोंसे उस मूर्तिको छू दिया। श्रीरामकी चरण-धूलि लगते ही वह मूर्ति दिव्य तेजोमयी स्त्री हो गयी। उस ऋषिपत्नी अहल्याने भगवान श्रीरामकी स्तुति की और फिर वह अपने पतिके पास तपोलोकको चली गयीं।

मिथिला पहुँचकर महर्षि विश्वामित्रजीने एक आमके बगीचेमें सबके साथ डेरा किया। महर्षिके आनेका समाचार पाकर महाराज जनक मन्त्रियों तथा कुलपुरोहितके साथ स्वागत करने आये और बड़े आग्रहसे उन्होंने महर्षि तथा श्रीराम-लक्ष्मणके साथ मुनिमण्डलीको नगरमें ले जाकर एक उत्तम

भवनमें ठहराया । श्रीराम-लक्ष्मण जब नगर देखने निकले, तब उनके अलौकिक सौन्दर्य तथा अद्भुत पराक्रमकी चर्चा सुनकर नगरवासी उन्हें देखने दौड़ पड़े । उनके दर्शन करके सभी नगरवासी भगवानसे मन-ही-मन प्रार्थना करने लगे कि श्रीरामके साथ ही श्रीजनकनन्दिनी सीताजीका विवाह हो ।

श्रीराम-लक्ष्मण राजकुमार होनेपर भी महर्षि विश्वामित्रकी बड़ी सावधानी एवं प्रेमसे सेवा करते थे । प्रातःकाल सूर्योदयसे एक पहर पहिले ही वे महर्षिके उठनेसे पूर्व उठ जाते थे, महर्षिकी पूजाके लिये पुष्प, जल आदि लाते थे । दिनमें जो भी सेवाका काम होता था, सब करते थे । आधी रात-तक ऋषिलोग परस्पर कथा, सत्सङ्ग तथा भगवानका गुणगान करते, इसके बाद जब महर्षि सो जाते, तब दोनों भाई चरण दबाते और तब सोने जाते, जब बार-बार स्नेहपूर्वक महर्षि इनसे सोनेके लिये कहते थे । इस प्रकार कुल तीन साढ़े तीन घंटे

सोकर दोनों भाई गुरुकी सेवामें ही लगे रहते थे। जनकपुरमें जब दोनों भाई महर्षिकी पूजाके लिये पुष्प लेने महाराज जनककी फुलवारीमें गये थे, तब उसी समय श्रीसीताजी भी अपनी माताकी आज्ञासे सखियोंके साथ भगवती पार्वतीका पूजन करने वहाँ आयी थीं। पहिले-पहिले फुलवारीमें ही श्रीराम तथा श्रीसीताने एक दूसरेको देखा।

स्वयंवरके दिन आये हुए राजालोग अच्छे उत्तम आसनोंपर बैठे थे। वह सभाभवन अच्छी तरह सजाया गया था। बीचमें भगवान शंकरका भारी धनुष रखा था। नगरके लोग भी वहाँ एकत्र हुए थे। स्त्री-पुरुष सबके लिये अलग-अलग बैठनेकी उत्तम व्यवस्था थी। महर्षि विश्वामित्रजी भी मुनियों तथा राम-लक्ष्मणके साथ एक ऊँचे सिंहासनपर आकर बैठ गये। सबके बैठ जानेपर महाराज जनककी प्रतिज्ञा सभामें सुनायी गयी। प्रतिज्ञा सुनकर राजा लोग धनुष उठानेके उद्योगमें लग गये, लेकिन

धनुष उठाना तो दूर, किसीसे हिल भी नहीं सका।

जब सब राजा हारकर बैठ गये, तब महाराज जनकको बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने राजाओंको फटकारते हुए कहा—'मैं जान गया कि पृथ्वीमें अब कोई वीर नहीं है। मैं अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ सकता। मेरी लड़कीका विवाह होना नहीं लिखा होगा, तो मैं कर ही क्या सकता हूँ। अब कोई अपनेको वीर कहनेका साहस न करे।'

श्रीलक्ष्मणजीसे महाराज जनककी ये बातें सही नहीं गयीं। उन्हें लगा कि यह तो श्रीरामजीका अपमान है। श्रीलक्ष्मणजी श्रीरामजीका अपमान नहीं सह सकते थे। वे उठकर खड़े हो गये और बोले—'महाराज जनकने श्रीरामजीके रहते हुए बहुत अनुचित बात कही है। यदि मेरे बड़े भाई श्रीराम मुझे आज्ञा दें तो इस धनुषको तो क्या मैं सुमेरु पर्वतको भी उखाड़कर मूलीकी तरह तोड़कर फेंक सकता हूँ।'

लक्ष्मणजीकी बातोंसे महाराज जनकको प्रसन्नता ही हुई। श्रीरामने लक्ष्मणजीको बैठनेका संकेत किया और वे चुपचाप बैठ गये। तब महर्षि विश्वामित्रजीने श्रीरामको धनुष तोड़नेके लिये कहा। श्रीरामने ऋषियोंको प्रणाम किया और वे धनुषके पास गये। उन्होंने धनुषको एक ही हाथसे झट उठाकर उसपर डोरी चढ़ा दी और देखते-ही-देखते खींचकर उसे तोड़ डाला। बड़े भारी शब्दके साथ धनुष टूट गया।

धनुषके टूट जानेपर कुलगुरुकी आज्ञासे श्रीसीताजी सखियोंके साथ श्रीरामके समीप आयीं और उन्होंने श्रीरामके गलेमें जयमाला पहना दी। बाजे बजने लगे और सब लोग जय-जयकार करने लगे।

तब मुनि सादर कहा बुझाई। चरित एक प्रभु देखिअ जाई॥
धनुषजग्य सुनि रघुकुल नाथा। हरषि चले मुनिवर के साथा॥
आश्रम एक दीख मग माहीं। खग मृग जीव जंतु तहँ नाहीं॥
पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कहा बिसेषी॥

मुनि तिय तरी लगत पग धूरी। कीरति रही भुवन भरि पूरी॥
बिस्वामित्र महामुनि आए। समाचार मिथिलापति पाए॥
सुंदर सदनु सुखद सब काला। तहाँ बासु लै दीन्ह भुआला॥
पुनि मुनि बृंद समेत कृपाला। देखन चले धनुष मख साला॥
सब मंचन्ह तें मंचु एक सुंदर बिसद बिसाल।
मुनि समेत दोउ बंधु तहँ बैठारे महिपाल॥

× × ×

सुनि पन सकल भूप अभिलाषे। भटमानी अतिसय मन माखे॥
तमकि ताकि तकि सिव धनु धरहीं। उठइ न कोटि भाँति बलु करहीं॥
नृपन्ह बिलोकि जनकु अकुलाने। बोले बचन रोष जनु साने॥
अब जनि कोउ माखै भटमानी। बीर बिहीन मही मैं जानी॥
तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू॥
माखे लखनु कुटिल भइँ भौंहें। रदपट फरकत नयन रिसौंहें॥
सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू॥
जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं॥
काचे घट जिमि डारौं फोरी। सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी॥

× × ×

बिस्वामित्र समय सुभ जानी। बोले अति सनेहमय बानी॥
उठहु राम भंजहु भव चापा। मेटहु तात जनक परितापा॥
गुरहि प्रनामु मनहिं मन कीन्हा। अति लाघवँ उठाइ धनु लीन्हा॥
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा॥
सतानंद तब आयसु दीन्हा। सीताँ गमनु राम पहिं कीन्हा॥
गावहिं छबि अवलोकि सहेली। सियँ जयमाल राम उर मेली॥
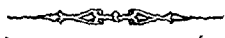
श्रीराम-विवाह

श्रीशंकरजीके धनुषके टूटनेकी बात सुनकर परम तेजस्वी परशुरामजी क्रोधमें भरे जनकपुर आये। परशुरामजी बड़े भारी पराक्रमी और बहुत क्रोधी स्वभावके हैं। उन्होंने पृथ्वीके क्षत्रियोंको इक्कीस बार ढूँढ़-ढूँढ़कर मारा था। उनको आते देखकर सभी राजा डरके मारे काँप गये। सबने उनको प्रणाम किया। परशुरामजीने धनुषके टुकड़ोंको देखकर महाराज जनकसे डाँटकर पूछा—'किसने धनुष तोड़ा है ?'

परशुरामजीके भयके मारे महाराज जनक या और कोई भी बोल नहीं सका। तब भगवान श्रीरामने नम्रतापूर्वक उनसे कहा—'मुनिवर ! धनुष तो आपके एक सेवकके हाथसे ही टूटा है। आपकी क्या आज्ञा है ?'

परशुरामजी अपने आराध्य देवता भगवान शंकरका धनुष टूट जानेसे बहुत क्षोभमें थे। वे क्रोधमें भरकर डाँटने लगे। क्रोधमें मनुष्यको यह विचार नहीं रह जाता कि क्या बात कहनी और क्या नहीं कहनी चाहिये। लेकिन लक्ष्मणजी यह बात नहीं सह सकते थे कि उनके रहते कोई श्रीरामके सामने कड़ी बातें कहे। उन्होंने परशुरामजीको कुछ व्यंग करते हुए समझाना चाहा कि उन्हें क्रोध नहीं करना चाहिये, पर परशुरामजीका क्रोध बढ़ता ही जाता था। वे बार-बार श्रीरामसे युद्ध करनेको कहते थे। किन्तु श्रीराम नम्रतापूर्वक ही उन्हें उत्तर देते रहे। अन्तमें परशुरामजीको अपनी भूलका पता लगा

गया। वे समझ गये कि श्रीराम तो साक्षात् भगवानके अवतार हैं। परशुरामजीको भगवान विष्णुने अपना धनुष दे रखा था। वह धनुष उन्होंने श्रीरामको दे दिया और दोनों भाइयोंसे क्षमा माँगकर वे तपस्या करने महेन्द्र-पर्वतपर चले गये।

परशुरामजीके चले जानेपर महर्षि विश्वामित्र-जीकी आज्ञासे महाराज जनकने महाराज दशरथको बुलानेके लिये अयोध्या दूत भेजा। समाचार पाकर महाराज दशरथ कुलगुरु महर्षि वसिष्ठ तथा भरत, शत्रुघ्नके साथ बड़ी भारी बारात सजाकर मिथिला आये। बड़ी धूमधामसे विधिपूर्वक श्रीसीताजीका श्रीरामजीके साथ विवाह हुआ। महाराज जनकने अपनी छोटी पुत्री उर्मिलाका विवाह लक्ष्मणजीसे कर दिया तथा अपने भाईकी कन्या माण्डवीका विवाह भरतजीसे और श्रुतिकीर्तिका विवाह शत्रुघ्नजी-से कर दिया। चारों राजकुमारोंका विवाह करके महाराज दशरथ उनकी वधुओंके साथ अयोध्या

राम-जानकीका विवाह

[पृष्ठ ३८

लौट आये । महर्षि विश्वामित्रजी भी साथ ही अयोध्या आये और कुछ दिन रहकर महाराज दशरथका स्वागत-सत्कार स्वीकार करके तब अपने आश्रमको लौट गये ।

सुनि सरोष भृगुनायकु आए । बहुत भाँति तिन्ह आँखि देखाए ॥
देखि राम बलु निज धनु दीन्हा । करि बहु बिनय गवनु बन कीन्हा ॥
पहुँचे दूत राम पुर पावन । हरषे नगर बिलोकि सुहावन ॥
समाचार सब लोगन्ह पाए । लागे घर घर होन बधाए ॥
सुमिरि रामु गुर आयसु पाई । चले महीपति संख बजाई ॥
प्रथम बरात लगन तें आई । तातें पुर प्रमोदु अधिकाई ॥
बेद बिहित अरु कुल आचारू । कीन्ह भली बिधि सब ब्यवहारू ॥
प्रमुदित मुनिन्ह भाँवरीं फेरीं । नेगसहित सब रीति निबेरीं ॥
जसि रघुबीर ब्याह बिधि बरनी । सकल कुअँर ब्याहे तेहिं करनी ॥
चली बरात निसान बजाई । मुदित छोट बड़ सब समुदाई ॥
बधुन्ह समेत देखि सुत चारी । परमानंद मगन महतारी ॥
सब बिधि सबहि समदि नरनाहू । रहा हृदयँ भरि पूरि उछाहू ॥

मंगल मोद उछाह नित जाहिं दिवस एहि भाँति ।
उमगी अवध अनंद भरि अधिक अधिक अधिकाति ॥

वनवास

महाराज दशरथने एक दिन श्रीरामको युवराज पद देनेकी बात सोची। उन्होंने गुरुदेव महर्षि वसिष्ठजीसे अपने मनकी बात जाकर कही। महर्षि वसिष्ठजीने कहा—'कल ही उत्तम मुहूर्त है। यह शुभ कार्य कल हो जाय तो बहुत उत्तम होगा। महाराजके पूछनेपर मन्त्रियों तथा प्रजाके मुखिया लोगोंने भी श्रीरामको शीघ्र युवराज बनानेकी राय दी। सभी लोग श्रीरामसे अत्यन्त प्रेम करते थे। सब चाहते थे कि श्रीराम राजगद्दीपर बैठें। नगरमें उत्सवकी तैयारी होने लगी। गुरुदेवने श्रीरामको भी उस दिन व्रत तथा आवश्यक संयम करनेके लिये कह दिया।

देवताओंको चिन्ता हुई कि श्रीराम राजा हो गये तो रावणको मारनेके काममें देर हो सकती है।

उन्होंने सरस्वतीदेवीसे प्रार्थना की । देवताओंकी प्रार्थनासे श्रीसरस्वतीजीने माता कैकेयीकी मन्थरा नामकी एक कुबड़ी दासीकी बुद्धि बदल दी । बुद्धि उलटी हो जानेसे उस दासीको श्रीरामके युवराज होनेकी बात बहुत बुरी लगी । वह राजमहलमें महारानी कैकेयीके पास गयी और रोते-रोते उसने श्रीरामको युवराज-पद दिये जानेकी तैयारीका समाचार सुनाया । माता कैकेयी श्रीरामको बहुत स्नेह करती थीं । वे इस समाचारको सुनकर बहुत प्रसन्न हुईं और दासी मन्थराको इनाम देने लगीं । लेकिन वह दासी तो रोती ही रही । उसने इनाम नहीं लिया ।

उन दिनों श्रीभरतजी छोटे भाई शत्रुघ्नजीके साथ अपने ननिहाल गये हुए थे । मन्थराने कहा—'महारानी कौसल्याने ही भरतको ननिहाल भिजवाया है और अपने पुत्रको चुपचाप राज्य दिलवा रही हैं । लौटनेपर भर[illegible]ने कैदखानेमें डलवा देंगी और आपको [illegible] कर रहना पड़ेगा ।'

महारानी कैकेयीने पहिले तो मन्थराको डाँट दिया था, किंतु फिर सरस्वतीने उनकी भी बुद्धि फेर दी। दासी मन्थराकी झूठी बातोंपर उन्होंने विश्वास कर लिया। मन्थराने ही उन्हें सिखा दिया कि 'वे कोपभवनमें चली जायँ और महाराज दशरथ जब उनके पास आवें, तब उनसे प्रतिज्ञा कराके श्रीरामको चौदह वर्षके लिये वनमें भेजनेका और भरतको युवराज बनानेका वरदान ले लें।' राजाओंके यहाँ एक अलग भवन ऐसा होता था कि राजपरिवारके किसीको क्रोध आवे तो अपना क्रोध सूचित करनेके लिये उस भवनमें चला जाता था। कैकेयीजीने सब गहने उतार दिये, मैले वस्त्र पहिन लिये और कोपभवनमें जाकर वे भूमिपर पड़ रहीं।

महाराज दशरथ जब रात्रिको कैकेयीजीके भवनमें गये, तब उनको कोपभवनमें देखकर बहुत दुखी हुए। महाराज दशरथ कैकेयीजीसे बहुत प्रेम करते थे। उन्होंने रानी कैकेयीको मनानेका बहुत प्रयत्न

किया । कैकेयीजीने कहा—'आपने मुझे दो वरदान देनेको कहा था, आज वह दीजिये ।' बात यह थी कि एक बार महाराज दशरथ देवताओंकी सहायता करने स्वर्ग गये थे और राक्षसोंसे युद्ध कर रहे थे । युद्धके समय महाराजके रथका धुरा टूट गया, कैकेयीजी भी साथ गयी थीं, उन्होंने धुरेके स्थानपर अपना हाथ लगा दिया । युद्ध समाप्त होनेपर महाराजको इस बातका पता लगा । उन्होंने कैकेयीजीसे दो वरदान माँग लेनेको कहा । उस समय कैकेयीजीने कह दिया—'पीछे कभी माँग लूँगी । आज वे अपने वे ही वरदान माँग रही थीं । महाराज दशरथने वरदान देनेकी जब प्रतिज्ञा कर ली, तब कैकेयीजीने कहा—'भरतको राज्य दीजिये और रामको चौदह वर्षके लिये वनमें भेज दीजिये ।' महाराज दशरथ तो श्रीरामके वनवासकी बात सुनते ही सन्न रह गये और मूर्च्छित हो गये ।

महारानी कैकेयीने पहिले तो मन्थराको डाँट दिया था, किंतु फिर सरस्वतीने उनकी भी बुद्धि फेर दी। दासी मन्थराकी झूठी बातोंपर उन्होंने विश्वास कर लिया। मन्थराने ही उन्हें सिखा दिया कि 'वे कोपभवनमें चली जायँ और महाराज दशरथ जब उनके पास आवें, तब उनसे प्रतिज्ञा कराके श्रीरामको चौदह वर्षके लिये वनमें भेजनेका और भरतको युवराज बनानेका वरदान ले लें।' राजाओंके यहाँ एक अलग भवन ऐसा होता था कि राजपरिवारके किसीको क्रोध आवे तो अपना क्रोध सूचित करनेके लिये उस भवनमें चला जाता था। कैकेयीजीने सब गहने उतार दिये, मैले वस्त्र पहिन लिये और कोपभवनमें जाकर वे भूमिपर पड़ रहीं।

महाराज दशरथ जब रात्रिको कैकेयीजीके भवनमें गये, तब उनको कोपभवनमें देखकर बहुत दुखी हुए। महाराज दशरथ कैकेयीजीसे बहुत प्रेम करते थे। उन्होंने रानी कैकेयीको मनानेका बहुत प्रयत्न

किया। कैकेयीजीने कहा—'आपने मुझे दो वरदान देनेको कहा था, आज वह दीजिये।' बात यह थी कि एक बार महाराज दशरथ देवताओंकी सहायता करने स्वर्ग गये थे और राक्षसोंसे युद्ध कर रहे थे। युद्धके समय महाराजके रथका धुरा टूट गया, कैकेयीजी भी साथ गयी थीं, उन्होंने धुरेके स्थानपर अपना हाथ लगा दिया। युद्ध समाप्त होनेपर महाराजको इस बातका पता लगा। उन्होंने कैकेयीजीसे दो वरदान माँग लेनेको कहा। उस समय कैकेयीजीने कह दिया—'पीछे कभी माँग लूँगी। आज वे अपने वे ही वरदान माँग रही थीं। महाराज दशरथने वरदान देनेकी जब प्रतिज्ञा कर ली, तब कैकेयीजीने कहा—'भरतको राज्य दीजिये और रामको चौदह वर्षके लिये वनमें भेज दीजिये।' महाराज दशरथ तो श्रीरामके वनवासकी बात सुनते ही सन्न रह गये और फिर मूर्च्छित हो गये।

महाराज दशरथ नित्य बड़े सबेरे उठ जाया करते थे। उस दिन जब उनके राजमहलसे बाहर आनेमें देर हुई तो लोगोंको बड़ी चिन्ता हुई। महामन्त्री सुमन्त्रजी राजभवनमें गये। श्रीकैकेयीजीके कहनेसे वे श्रीरामको वहीं बुला लाये। महाराज दशरथने तो कुछ कहा नहीं, किंतु माता कैकेयीजीसे सब बातें सुनकर श्रीरामने पिताके वचनोंकी रक्षाके लिये स्वयं वन जाना बड़े हर्षके साथ स्वीकार कर लिया। वे माता कौसल्यासे विदा माँगने उनके समीप गये। श्रीजानकीजी एवं श्रीलक्ष्मणजी भी श्रीरामके साथ वन जानेको तैयार हो गये। श्रीरामने उन्हें बहुत समझाया, लेकिन उनका साथ चलनेका अत्यन्त आग्रह देखकर साथ ले लिया।

बात नगरमें फैल गयी थी। सभी लोग इस दुःखद समाचारसे बहुत व्याकुल थे। रानी कैकेयीको बहुत लोगोंने समझाया, पर वे अपने हठपर अड़ी रहीं। माताकी आज्ञा लेकर श्रीराम श्रीसीताजी

तथा लक्ष्मणजीके साथ कैकेयीजीके पास आये। वहाँ उन्होंने आभूषण तथा राजसी वस्त्र उतार दिये और मुनियोंके वस्त्र—वल्कल पहिन लिये। वहाँसे वे बाहर निकले। महाराज दशरथने सुमन्त्रजीको भेजा कि वे श्रीरामको रथपर बैठाकर ले जायँ। सुमन्त्रके कहनेपर श्रीराम-लक्ष्मण तथा श्रीसीताजी रथपर बैठ गये। श्रीरामके वियोगसे दुखी नगरवासी रोते-कलपते घर-द्वार छोड़कर श्रीरामके रथके पीछे-पीछे चल पड़े। कुछ दूर जाकर श्रीरामने रथ रोक दिया। वहीं उस दिन सब लोग रुक गये। जब रात्रिमें सब लोग सो गये, तब श्रीरामने मन्त्री सुमन्त्रको चुपचाप रथ चलानेको कहा, क्योंकि नगरके लोग साथ वनमें जाकर दुःख उठावें, यह श्रीराम नहीं चाहते थे। प्रातःकाल लोग जगे तो उन्होंने बहुत ढूँढ़ा; किंतु उन्हें रथका पता नहीं लगा। वे निराश होकर अयोध्या लौट आये।

रात्रिमें ही रथपर बैठकर श्रीराम सीताजी और लक्ष्मणजीके साथ गङ्गाजीके किनारे शृंगवेरपुर पहुँच गये। यहाँ निषादोंके राजा गुह श्रीरामके बालकपनके मित्र थे। निषादराज गुहने श्रीरामका स्वागत किया और उनसे नगरमें चलनेकी प्रार्थना की। लेकिन पिताके वचनकी मर्यादा रखनेके लिये श्रीराम नगर नहीं गये। वे रात्रिमें एक वृक्षके नीचे ठहरे। प्रातःकाल मन्त्री सुमन्त्रको उन्होंने रथके साथ अयोध्या लौट जानेके लिये कह दिया और नौकासे श्रीसीताजी तथा लक्ष्मणजीके साथ गङ्गापार करके वे पैदल ही वनको चल पड़े।

प्रयाग पहुँचनेपर महर्षि भरद्वाजजीने श्रीरामका सत्कार किया। वहाँसे श्रीयमुनाजीको पार करके वे महर्षि वाल्मीकिके आश्रमपर पहुँचे। महर्षिने श्रीरामको चित्रकूटमें निवास करनेकी सलाह दी। वाल्मीकि-आश्रमसे चलकर श्रीराम चित्रकूट आये। वहाँ पयस्विनी नदीके किनारे कामदगिरिके पास

उनके लिये वनवासी कोल-भील लोगोंने दो कुटियाँ बना दीं। महर्षि अत्रिका आश्रम भी कुछ ही दूर था। दूसरे ऋषि-मुनि भी वहाँ रहते थे। श्रीराम चित्रकूटमें निवास करने लगे। ऋषि-मुनि तथा वनवासी लोग उनसे अत्यन्त प्रेम करते थे और सभी उनकी सुविधाका पूरा ध्यान रखते थे। श्रीराम मुनियोंका भली प्रकार सम्मान करते थे। वनवासियोंपर पुत्रकी भाँति उनका स्नेह था।

कहइ भुआलु सुनिअ मुनि नायक। भए राम सब बिधि सब लायक॥
नाथ रामु करिअहिं जुबराजू। कहिअ कृपा करि करिअ समाजू॥
बेगि बिलंबु न करिअ नृप साजिअ सबुइ समाजु।
सुदिन सुमंगलु तबहिं जब रामु होहिं जुबराजु॥
सुनत राम अभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा॥
तब नरनाहँ बसिष्ठु बोलाए। राम धाम सिख देन पठाए॥
राम करहु सब संजम आजू। जौं बिधि कुसल निबाहै काजू॥
सकल कहहिं कब होइहि काली। बिघन मनावहिं देव कुचाली॥
नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि॥
भरत मातु पहिं गइ बिलखानी। का अनमनि हसि कह हँसि रानी॥
रामहि तिलक कालि जौं भयऊ। तुम्ह कहुँ बिपति बीजु बिधि बयऊ॥

कैकयसुता सुनत कटु बानी । कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी
दुइ बरदान भूप सन थाती । मागहु आजु जुड़ावहु छाती
बहुबिधि चेरिहि आदरु देई । कोपभवन गवनी कैकेई
जाइ निकट नृपु कह मृदु बानी । प्रानप्रिया केहि हेतु रिसानी
सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का । देहु एक बर भरतहि टीका
तापस बेष बिसेषि उदासी । चौदह बरिस रामु बनबासी
गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा । जनु सचान बन झपटेउ लावा
गए सुमंत्रु तब राउर माहीं । देखि भयावन जात डेराहीं
सचिव सभीत सकइ नहिं पूँछी । बोली असुभ भरी सुभ छूछी
आनहु रामहि बेगि बोलाई । समाचार तब पूँछेहु आई
करुनामय मृदु राम सुभाऊ । प्रथम दीख दुखु सुना न काऊ ।
तदपि धीर धरि समउ बिचारी । पूँछी मधुर बचन महतारी ।
मोहि कहु मातु तात दुख कारन । करिअ जतन जेहिं होइ निवारन ।
सबु प्रसंगु रघुपतिहि सुनाई । बैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई ॥

पितु आयस भूषन बसन तात तजे रघुबीर ।
बिसमउ हरषु न हृदयँ कछु पहिरे बलकल चीर ॥

चले बिपिन सुनि सिय सँग लागी । रहइ न राम चरन अनुरागी ॥
सुनतहिं लखनु चले उठि साथा । रहहिं न जतन किए रघुनाथा ॥
तब रघुपति सबही सिरु नाई । चले संग सिय अरु लघु भाई ॥
देखत बन सर सैल सुहाए । बालमीकि आश्रम प्रभु आए ॥
चित्रकूट रघुनंदनु छाए । समाचार सुनि सुनि मुनि आए ॥
एहि बिधि सिय समेत दोउ भाई । बसहिं बिपिन सुर मुनि सुखदाई ॥

अपनी परीक्षा कीजिये

नीचे कुछ प्रश्न दिये गये हैं, आपको इतना ही उत्तर देना है कि कौन-सी बात ठीक है और कौन-सी गलत। प्रत्येक प्रश्नके दस नंबर हैं। यदि आप सौ नंबर पा सकें तो आपने पुस्तक समझकर पढ़ी है। यदि इससे कम नंबर पावें तो पुस्तकको फिर ध्यानसे पढ़ें। पुस्तकके अन्तमें उत्तर दिये गये हैं। उनसे अपने उत्तर मिलाकर देखिये।

१—महाराज दशरथ अयोध्याके राजा थे। उनके तीन रानियाँ थीं—कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी। श्रीराम महारानी कौसल्याके पुत्र थे।

२—देवताओंकी प्रार्थनासे रावणको मारकर

पृथ्वीका भार दूर करनेके लिये श्रीरामने अवतार लिया था ।

३—श्रीराम पढ़ते समय गुरुके यहाँ राजकुमारोंके समान बड़े ठाट-बाटसे रहते थे ।

४—महर्षि विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा करते समय श्रीरामने मारीच नामके राक्षसको बाण मारकर समुद्रके किनारे फेंक दिया था ।

५—महाराज जनकने अपनी पुत्री सीताजीके स्वयंवरका निमन्त्रण सब कहीं भिजवाया ।

६—महर्षि विश्वामित्रजीके कहनेसे श्रीरामने बिना किसी परिश्रमके शंकरजीका धनुष तोड़ दिया ।

७—श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—चारों भाइयोंका विवाह जनकपुरमें ही हो गया ।

८—मन्थरा जन्मसे ही बुरी थी और रानी कैकेयी भी श्रीरामसे प्रेम नहीं रखती थीं ।

९—महाराज दशरथने श्रीरामको वनमें जाकर चौदह वर्ष रहनेको कहा ।

१०—श्रीरामने बहुत चाहा कि सीताजी और लक्ष्मणजी वनमें न चलें; किंतु उन दोनोंके अत्यन्त आग्रहके कारण श्रीरामको उन्हें साथ ले जाना पड़ा ।

११—श्रीराम अयोध्याके लोगोंको अपने साथ इसलिये नहीं ले जाना चाहते थे कि वनमें उन सब लोगोंको कष्ट होगा ।

१२—चित्रकूटमें श्रीरामके लिये वहाँके लोगोंने बड़ा भारी सुन्दर महल बना दिया । श्रीराम चित्रकूटमें एक महाराजाके समान रहते थे ।

उत्तर ठीक और गलत

१—ठीक, २—ठीक, ३—गलत, ४—ठीक, ५—गलत, ६—ठीक, ७—ठीक, ८—गलत, ९—गलत, १०—ठीक, ११—ठीक, १२—गलत ।

भगवान राम (भाग २)

॥ श्रीहरिः

भगवान राम

[भाग २]

गीताप्रेस, गोरखपुर

मुद्रक तथा प्रकाशक
मोतीलाल जालान
गीताप्रेस, गोरखपुर

संवत् २०१० से २०१७ तक १,८०,०००
संवत् २०१९ ग्यारहवाँ संस्करण ३५,०००
संवत् २०२२ बारहवाँ संस्करण ४०,०००
कुल २,५५,०००

मूल्[illegible] नये पैसे)

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपु

ॐ

निवेदन

हमारे बालकोंको अपने पूर्वज महापुरुषोंके जीवनके सम्बन्धमें जानकारी रहे, इसी उद्देश्यसे 'भगवान राम' नामकी यह पुस्तक छोटे-छोटे दो भागोंमें सचित्र प्रकाशित की जाती है। यह दूसरा भाग है। इसे पढ़नेसे बालक-बालिकाओंको रामके चरित्रकी जानकारी तो होगी ही, साथ ही उनके चरित्रसे शिक्षा भी प्राप्त होगी। इसमें प्रत्येक अध्यायमें रामचरितमानस-की उसी प्रसङ्गकी चुनी हुई चौपाइयाँ और दोहे दिये गये हैं। इससे भाषाज्ञानके साथ ही मानसके प्रसङ्गोंका भी ज्ञान होगा तथा बालकोंके लिये यह रुचिकर भी होगा। इसमें जो बातें लिखी गयी हैं, सभी रामायणके आधारपर लिखी गयी हैं। हमारे बालक-बालिका इससे लाभ उठावें, यही निवेदन है।

विनीत

प्रकाशक

श्रीहरिः

विषय-सूची

चित्र-सूची

राजा राम

श्रीहरिः

भगवान राम

[दूसरा भाग]

श्रीरामसे भरतजीकी भेंट

महामन्त्री सुमन्त्र किसी प्रकार अयोध्या लौटे। महाराज दशरथको जब यह समाचार मिला कि श्रीराम, लक्ष्मण तथा सीता तीनोंमेंसे कोई भी नहीं लौटे, तब उन्हें इतना दुःख हुआ कि उनके प्राण शरीरसे निकल ही गये। महर्षि वशिष्ठजीने

महाराज दशरथके शरीरको तेलमें डुबोकर रखवा दिया और भरतजीको बुलानेके लिये दूत उनके ननिहाल कैकयदेश भेज दिये।

'गुरुदेवने बुलवाया है,' दूतोंसे यह संदेश सुनकर भरतजी तुरंत ननिहालसे चलकर अयोध्या आये। दूतोंने उन्हें कोई समाचार नहीं दिया था, किंतु नगरकी सुनसान दशा देखकर उन्हें बड़ी आशङ्का हुई। केवल महारानी कैकेयीने ही उनका स्वागत किया। बड़े उत्साहसे कैकेयीने अपनी सारी करतूत भरतजीको सुनायी। पिताके परलोकवासका समाचार सुनकर भरतजी अत्यन्त व्याकुल हो गये। जब श्रीरामके वन जानेकी बात उन्होंने सुनी, तब तो उनके दुःखकी सीमा ही नहीं रही। उन्होंने अपनी माता कैकेयीको बहुत धिक्कारा। शत्रुघ्नजीने दासी मन्थराको एक लात लगायी और उसकी चोटी पकड़कर वे घसीटने लगे। वे उसे

बहुत मारते, किंतु भरतजीने दया करके उन्हें ऐसा करनेसे रोक दिया। भरतजी शत्रुघ्नके साथ वहाँसे माता कौसल्याके पास आये। उन्होंने कैकेयीसे बोलना ही बंद कर दिया और पूरे चौदह वर्षतक, जबतक कि श्रीराम अयोध्या लौटकर नहीं आये, वे कैकेयीसे नहीं बोले।

श्रीभरतजीने शपथ करके माता कौसल्याके सामने फूट-फूटकर रोते हुए कहा—'श्रीरामके वनवासमें मेरा कोई अपराध नहीं है।' माता कौसल्या भरतजीसे श्रीरामके समान ही स्नेह करती थीं। भरतजीपर उन्हें तनिक भी संदेह नहीं था। उन्होंने भरतको आश्वासन दिया। महर्षि वशिष्ठजीकी आज्ञासे भरतजीने पिताके शरीरका दाह-संस्कार किया और मृत्युके पश्चात् होनेवाले सभी कर्म विधिपूर्वक कराये। महाराज दशरथका अन्त्येष्टि संस्कार हो जानेपर एक दिन सब लोग एकत्र हुए। गुरुदेव महर्षि वशिष्ठ, महामन्त्री सुमन्त्र, माता

कौसल्या तथा राजसभाके सभी सभासदोंने भरतजीसे कहा—'महाराज दशरथने आपको राज्य दिया है। जबतक श्रीराम लौटकर न आवें, तबतक तो आपको अवश्य प्रजाका पालन करना ही चाहिये।'

श्रीभरतजीने बड़ी नम्रतासे सबसे प्रार्थना करते हुए स्पष्टरूपसे राज्य लेना अस्वीकार कर दिया। उन्होंने श्रीरामके पास वनमें जाने तथा उन्हें मना लानेकी इच्छा प्रकट की। इस बातसे सभीको बहुत प्रसन्नता हुई। श्रीरामका वनमें ही राज्याभिषेक कर देनेका विचार पक्का हो गया। राज्याभिषेककी सब सामग्री साथ ले ली गयी। नगरमें केवल रक्षाके लिये कुछ लोग रह गये, बाकी सब भरतजीके साथ श्रीरामके दर्शन करने वनको चल पड़े।

श्रीभरतजीके साथ बहुत अधिक लोग थे। हाथी, घोड़े, रथ भी बहुत थे। भरतजी जब शृंग-वेरपुरके पास पहुँचे, तब निषादराज गुहको संदेह

हो गया कि बड़ी भारी सेनाके साथ भरतजी कहीं श्रीरामको वनमें कष्ट देने या युद्ध करके मारनेके विचारसे तो नहीं जा रहे हैं। पहिले तो गुहने भरतजीसे युद्ध करनेका विचार कर लिया, किंतु पीछे भरतजीसे मिलकर उनका विचार जानना ठीक जान पड़ा। केवल अनुमान करके जल्दीमें कोई काम नहीं करना चाहिये, ऐसा करनेपर पीछे बहुत पछताना पड़ता है। भरतजीसे मिलते ही निषादराज गुहको अपनी भूलका पता लग गया। उन्होंने भरतजीका स्वागत-सत्कार किया।

श्रीराम वनमें पैदल चलते हैं, यह सोचकर भरतजी शृंगवेरपुरसे आगे चित्रकूटतक पैदल ही चले। उनके सुकुमार चरणोंमें छाले पड़ गये, किंतु उन्होंने सब लोगोंके कहनेपर भी रथ या घोड़ेपर बैठना स्वीकार नहीं किया। प्रयाग पहुँचनेपर महर्षि भरद्वाजने भी भरतजीका बहुत स्वागत-सत्कार किया। इस प्रकार श्रीभरतजी चित्रकूट पहुँचे।

महाराज दशरथके परलोकवासका समाचार जनकपुर भी पहुँच गया था। महाराज जनकने दूत भेजकर अयोध्याका समाचार मँगाया और भरतजीके चित्रकूट जानेकी बात सुनकर वे भी अपने परिवार, मन्त्री तथा सेवकोंके साथ चित्रकूट आये। चित्रकूटमें अयोध्या और मिथिलाके सभी लोग पड़ाव डालकर कई दिनोंतक रुके रहे। श्रीरामने सबका यथोचित सम्मान-सत्कार किया। महर्षि वशिष्ठ, महाराज जनक तथा सभी लोग चाहते थे कि श्रीराम अयोध्या लौट चलें। लेकिन धर्मात्मा लोग किसीको सत्य तथा धर्मके नियम छोड़नेका हठ नहीं करते। सबने श्रीरामपर ही निर्णयका भार छोड़ दिया। श्रीरामने भरतजीको समझाया कि पिताजीकी आज्ञाका पालन सभीको करना चाहिये। अन्तमें भरतजीने यह स्वीकार कर लिया कि 'आप अपना कोई चिह्न प्रतिनिधिरूपसे दे देंगे तो मैं अयोध्या लौट जाऊँगा।' श्रीरामने अपनी खड़ाऊँ दे दी और

भरतजीको रामजीने पादुका दे दी [

उसे लेकर भरतजी सबके साथ वनसे लौट आये।

महाराज जनक कुछ दिन अयोध्या रहकर मिथिला चले गये। भरतजीने राजसिंहासनपर नन्दिग्राममें श्रीरामकी चरणपादुका स्थापित कर दी। राज, परिवार तथा नगरकी रक्षाका भार शत्रुघ्नजीको दे दिया। भूमिमें गड्ढा खोदकर उसमें कुशा बिछाकर वे उन्हीं कुशोंपर ही रात्रिके समय कुछ विश्राम करते थे। श्रीरामकी चरणपादुका (खड़ाऊँ) का पूजन और राम-नामका जप करते हुए वे तपस्या करने लगे। गायको खिलाये हुए जौके दाने जब गोबरमें निकलते तो उनको गोमूत्रमें उबाल लिया जाता। इस प्रकार उबाले हुए जौ ही भरतजी भोजन करते थे। चौदह वर्षतक कठोर तपस्या करते हुए भरतजी श्रीरामके आगमनकी प्रतीक्षा करते रहे।

सूत बचन सुनतहिं नरनाहू। परेउ धरनि उर दारुन दाहू॥
राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम॥

तेल नावँ भरि नृप तनु राखा । दूत बोलाइ बहुरि अस भाषा ॥
एतनेइ कहेहु भरत सन जाई । गुर बोलाइ पठयउ दोउ भाई ॥

एहि बिधि सोचत भरत मन धावन पहुँचे आइ ।
गुर अनुसासन श्रवन सुनि चले गनेसु मनाइ ॥

आवत सुत सुनि कैकयनंदिनि । हरषी रबिकुल जलरुह चंदिनि ॥
सजि आरती मुदित उठि धाई । द्वारेहिं भेंटि भवन लेइ आई ॥
आदिहु तें सब आपनि करनी । कुटिल कठोर मुदित मन बरनी ॥

भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौनु ।
हेतु अपनपउ जानि जियँ थकित रहे धरि मौनु ॥

तेहि अवसर कुबरी तहँ आई । बसन बिभूषन बिबिध बनाई ॥
हुमगि लात तकि कूबर मारा । परि मुह भर महि करत पुकारा ॥
भरत दयानिधि दीन्हि छड़ाई । कौसल्या पहिं गे दोउ भाई ॥
मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे । कहि परमारथ बचन सुदेसे ॥
सोधि सुमृति सब बेद पुराना । कीन्ह भरत दसगात बिधाना ॥
भरतु बसिष्ठ निकट बैठारे । नीति धरममय बचन उचारे ॥
रायँ राजपदु तुम्ह कहुँ दीन्हा । पिता बचनु फुर चाहिअ कीन्हा ॥
गुर के बचन सचिव अभिनंदनु । सुने भरत हिय हित जनु चंदनु ॥

भरतु कमल कर जोरि धीर धुरंधर धीर धरि ।
बचन अमिअँ जनु बोरि देत उचित उत्तर सबहि ॥
आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहि सिरु नाइ ।
देखें बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ ॥

एकहिं आँक इहइ मन माहीं। प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं॥
भरत बचन सब कहँ प्रिय लागे। राम सनेह सुधाँ जनु पागे॥
गवने भरत पयादेहिं पाए। कोतल संग जाहिं डोरिआए॥
झलका झलकत पायन्ह कैसें। पंकज कोस ओस कन जैसें॥
चले भरत जहँ सिय रघुराई। साथ निषादनाथु लघु भाई॥
मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की। सुरगन सभय धकधकी धरकी॥
जनक दूत तेहि अवसर आए। मुनि बसिष्ठँ सुनि बेगि बोलाए॥

सुनत जनक आगवनु सबु हरषेउ अवध समाजु।
रघुनंदनहि सकोच बड़ सोच बिबस सुरराजु॥

देखि दयाल दसा सब ही की। राम सुजान जानि जन जी की॥
बोले बचन बानि सरबसु से। हित परिनाम सुनत ससि रसु से॥
मातु पिता गुर स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधर सेसू॥
सो तुम्ह करहु करावहु मोहू। तात तरनिकुल पालक होहू॥
भरतहि भयउ परम संतोषू। सनमुख स्वामि बिमुख दुख दोषू॥
सो अवलंब देव मोहि देई। अवधि पारु पावौं जेहि सेई॥
प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥
प्रभु पद पदुम बंदि दोउ भाई। चले सीस धरि राम रजाई॥
नंदिगाँव करि परन कुटीरा। कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा॥

नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदयँ समाति।
मागि मागि आयसु करत राज काज बहु भाँति॥

लखन राम सिय कानन बसहीं। भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं॥

सीता-हरण

भगवान श्रीरामने सोचा कि चित्रकूटमें रहनेसे अयोध्याके लोग बार-बार यहाँ आते रहेंगे, इससे वे महर्षि अत्रिके आश्रममें गये और उनसे आज्ञा लेकर वनके मार्गसे दक्षिणकी ओर चल पड़े। मार्गमें विराध नामके असुरको उन्होंने मारा। शरभंग तथा सुतीक्ष्ण मुनिके आश्रमोंपर होते हुए वे दंडकारण्यमें ऋषिश्रेष्ठ अगस्त्यजीके आश्रमपर पहुँचे। अगस्त्यजीकी अनुमतिसे श्रीरामने पंचवटीमें फूसकी कुटियामें लक्ष्मण तथा सीताजीके साथ निवास किया।

एक दिन रावणकी बहिन शूर्पणखा वनमें घूमती हुई श्रीरामके आश्रमके पास पहुँच गयी। उसने मायासे बहुत सुन्दर रूप बना लिया और श्रीरामके पास पहुँचकर उनसे विवाह करनेकी बात कहने लगी। श्रीरामने उसे लक्ष्मणके पास भेज दिया। लक्ष्मणजी भी समझ गये कि वह राक्षसी है। जब शूर्पणखाने देखा कि दोनों भाइयोंमेंसे कोई भी उससे विवाह नहीं करना चाहता, तब अपना भयानक रूप प्रकट करके श्रीसीताजीको मारने दौड़ी। इसपर श्रीरामके संकेतसे लक्ष्मणजीने उसके नाक-कान काट दिये।

नकटी-बूची शूर्पणखा रोती-चिल्लाती खर-दूषणके पास गयी। खर, दूषण और त्रिशिरा सगे भाई थे। ये रावणके सामन्त थे और इनके पास चौदह हजार राक्षसोंकी सेना थी। शूर्पणखाने खर-दूषणको बताया कि लक्ष्मणने बिना अपराध मेरे नाक-कान काटे हैं। खर-दूषण अपनी पूरी सेना

लेकर युद्ध करने दौड़ पड़े। राक्षसोंकी बड़ी भारी सेना देखकर श्रीसीताजीको श्रीरामने एक गुफामें भेज दिया और लक्ष्मणजीको उनकी रक्षाके लिये रख दिया तथा स्वयं राक्षसोंसे युद्ध करने खड़े हो गये। बड़ा भयानक युद्ध हुआ। थोड़ी ही देरमें श्रीरामने खर, दूषण, त्रिशिरा तथा उनकी सारी सेनाको समाप्त कर दिया।

खर-दूषणके मारे जानेपर शूर्पणखा लंकामें रावणके पास गयी। रावणने शूर्पणखाकी सब बातें सुनीं। राक्षस रावण बड़ा विद्वान् था। उसने समझ लिया कि खर-दूषण-जैसे बलवान राक्षसोंको कोई साधारण मनुष्य नहीं मार सकता। अवश्य भगवानने अवतार लिया है। भगवानके हाथसे मरनेसे भी मोक्ष प्राप्त होता है यह सोचकर रावणने श्रीरामसे शत्रुता करनेका निश्चय किया। महर्षि विश्वामित्रकी यज्ञरक्षाके समय श्रीरामने बिना नोकका बाण मारकर मारीच राक्षसको

समुद्र किनारे फेंक दिया था। यह मारीच बड़ा मायावी था। रावण मारीचके पास गया और उसने मारीचसे सीताजीको चुरा लेनेके काममें सहायता देनेको कहा। पहले तो मारीचने रावणको समझाने-का प्रयत्न किया, किंतु जब रावणने मार डालने-की धमकी दी तो मारीचने सहायता देना स्वीकार कर लिया।

भगवान श्रीराम सर्वज्ञ हैं। उन्होंने राक्षसोंके विनाशके लिये ही अवतार धारण किया था। वे जानते ही थे कि रावण श्रीसीताजीको चुराने आयेगा। इसलिये उन्होंने श्रीसीताजीको तो अग्निमें प्रवेश कर जानेको कह दिया और एक वैसी ही मायाकी सीता बनाकर उसे अपने पास रख लिया। अब आगेकी सब बातें इस मायाकी बनी सीता-जीकी हैं।

मारीच सोनेका हिरन बनकर श्रीरामजीकी कुटीके पास इधर-उधर घूमने लगा। श्रीसीताजीने

इतना सुन्दर हिरन देखकर श्रीरामसे कहा कि 'आप इसे मारकर इसका चर्म मुझे ला दीजिये।' श्रीरामने धनुष चढ़ाया और वे मृग बने मारीचके पीछे दौड़ पड़े। मारीच बड़ी दूरतक दौड़ता चला गया। बहुत दूर जाकर श्रीरामने उसपर बाण छोड़ा। बाण लगनेपर मारीचने मृगरूप छोड़ दिया और अपने रूपमें प्रकट होकर मरते-मरते छलसे उसने जोरसे लक्ष्मणजीको नाम लेकर पुकारा।

श्रीसीताजीने दूरसे मारीचका पुकारना सुना तो समझा कि श्रीराम किसी संकटमें हैं और लक्ष्मणजी-को पुकार रहे हैं। उन्होंने लक्ष्मणजीको बड़े भाईके पास जानेको कहा। श्रीलक्ष्मणजी सीताजीको अकेली छोड़कर नहीं जाना चाहते थे, किंतु जब सीताजीने बहुत हठ किया तो मन्त्र पढ़कर सीताजीके चारों ओर रेखा खींचकर वे श्रीरामके पास चले गये।

रावण छिपा हुआ सब देख रहा था। लक्ष्मणजीके चले जानेपर वह एक साधुके वेशमें आया।

रावण जटायुको मार रहा है

[पृष्ठ १०

सीताजी जब उसे भिक्षा देने लगीं तो उसने उनसे लक्ष्मणजीद्वारा खींची रेखासे बाहर आनेको कहा। रावणको साधु समझकर सीताजी भिक्षा देने जैसे ही रेखासे बाहर आयीं, रावणने अपना रूप प्रकट कर दिया और सीताजीको पकड़कर आकाशमें उड़नेवाले रथमें बैठाकर भागा।

श्रीसीताजी रोती, विलाप करती 'हा राम! हा राम!' पुकारती जा रही थीं। उनका रोना सुनकर गीधराज जटायुने रावणको ललकारा। जटायु महाराज दशरथके मित्र थे और उसी वनमें एक गुफामें रहते थे। रावणसे जटायुने खूब युद्ध किया; किंतु अन्तमें रावणने तलवारसे उनका पंख काट दिया। वे गिर पड़े। रावण सीताजीको लेकर आकाश-मार्गसे लंका जाने लगा। श्रीसीताजी अपने शरीरके आभूषण मार्गमें फेंकती जाती थीं, जिससे श्रीराम उनका कुछ पता जान सकें। लंकामें रावणने श्रीसीताजीको अशोकवनमें रख दिया और उनकी

क्षाके लिये बहुत-सी राक्षसियाँ नियुक्त कर दीं।

हरि राम अस मन अनुमाना। होइहि भीर सबहिं मोहि जाना॥
किल मुनिन्ह सन बिदा कराई। सीता सहित चले द्वौ भाई॥
नि प्रभु पंचबटीं कृत बासा। भंजी सकल मुनिन्ह की त्रासा॥
पनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी॥

लछिमन अति लाघवँ सो नाक कान बिनु कीन्हि।
ताके कर रावन कहँ मनौ चुनौती दीन्हि॥

र दूषन पहिं गइ बिलपाता। धिग धिग तव पौरुष बल भ्राता॥
हिं पूछा सब कहेसि बुझाई। जातुधान सुनि सेन बनाई॥
खि राम रिपुदल चलि आवा। बिहसि कठिन कोदंड चढ़ावा॥

राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान।
करि उपाय रिपु मारे छन महुँ कृपानिधान॥

ँ देखि खर दूषन केरा। जाइ सुपनखाँ रावन प्रेरा॥
दूषन तिसिरा कर घाता। सुनि दससीस जरे सब गाता॥
न बीच दसकंधर देखा। आवा निकट जती कें बेषा॥

क्रोधवंत तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ।
चला गगनपथ आतुर भयँ रथ हाँकि न जाइ॥

ीधराज सुनि आरत बानी। रघुकुल तिलक नारि पहिचानी॥
आवा क्रोधवंत खग कैसें। छूटइ पबि परबत कहुँ जैसें॥
काटेसि पंख परा खग धरनी। सुमिरि राम करि अदभुत करनी॥
एहि बिधि सीतहि सो लै गयऊ। बन असोक महँ राखत भयऊ॥

सुग्रीवसे मित्रता

मारीचको मारकर श्रीराम लौटे। मार्गमें ही उन्हें लक्ष्मण मिल गये। आश्रमपर लौटनेपर सीताजी नहीं मिलीं। श्रीरामने साधारण मनुष्योंके समान व्यवहारका आदर्श दिखलानेके लिये पत्नीके वियोगमें बड़ा दुःख प्रकट किया। वे सीताजीको ढूँढ़ते हुए लक्ष्मणके साथ आगे दक्षिणकी ओर चले। पंख कटे जटायुको देखकर श्रीरामके नेत्र भर आये जटायुने रावणकी दुष्टताका समाचार बताकर शरी छोड़ दिया। भगवान श्रीरामने गीधराज जटायुक अन्तिम संस्कार अपने पिताके समान बड़ी श्रद्धासे किया

महर्षि मतंगजीके आश्रममें शबरी नामकी एव तपस्विनी रहती थी। वह जातिसे तो भील थी, किं

भगवानकी बड़ी भक्त थी। मतंग ऋषिने उससे कहा था कि भगवान श्रीराम स्वयं तुम्हारे यहाँ आयेंगे। वह तभीसे नित्य रास्तेमें झाड़ू देती और वनसे मीठे-मीठे फल लाकर भगवानके लिये रखती। इस प्रकार बहुत दिनोंसे वह भगवानकी बाट देख रही थी। वहाँ और भी दूसरे ऋषि-मुनियोंके आश्रम थे। श्रीराम तो केवल भक्तिको ही आदर देनेवाले हैं। सीताजीको ढूँढ़ते हुए वे जब वहाँ पहुँचे तो [illegible] यहाँ न जाकर सीधे शबरीजीकी कुटी- [illegible] गये। शबरीने बड़े प्रेमसे श्रीराम-लक्ष्मणका [illegible]त किया। श्रीरामने भी उनके दिये हुए फल [illegible] रुचिसे खाये और उनको भक्तिका वरदान दिया।

किष्किन्धापुरीमें बालि वानरोंके राजा थे। [सु]ग्रीव उनके छोटे भाई थे। पहले दोनों भाइयोंमें [ब]ड़ी मित्रता थी। एक बार एक राक्षसने बालिको [य]ुद्धके लिये ललकारा। बालि जब उससे लड़ने [द]ौड़ा तब वह भागकर एक गुफामें छिप गया।

सुग्रीवको बालिने गुफाके बाहर पंद्रह दिन बैठकर प्रतीक्षा करनेको कहा और स्वयं गुफामें राक्षसको मारने घुस गया। सुग्रीव वहाँ एक महीने बैठे रहे। इसके बाद सुग्रीवने देखा कि गुफाके भीतरसे रक्तकी धारा बहती आ रही है। उन्होंने समझा कि राक्षसने उनके भाईको मार डाला है। डरके मारे गुफाके मुँहपर बड़ा भारी पत्थर रखकर वे नगरमें भाग आये। नगरमें मन्त्रियोंने बालिको मरा समझकर उन्हें राजा बना दिया। गुफासे निकला हुआ रक्त राक्षसका था। बालि राक्षसको मारकर नगरमें आया। सुग्रीवको राजा बना देखकर उसने समझा कि यह राज्यके लोभसे मुझे गुफामें बंद करके मारनेके लिये गुफापर पत्थर रख आया था। बालिने बिना ही असली बातका पता लगाये क्रोधमें भरकर सुग्रीवको मारना आरम्भ किया। उसने उनकी सब सम्पत्ति और स्त्री भी छीन ली। प्राण बचानेके लिये सुग्रीव इधर-उधर भागते फिरे, किंतु बालिने तब उनका पीछा छोड़ा जब वे

ऋष्यमूक पर्वतपर पहुँच गये। इस पर्वतपर पहले एक ऋषि रहते थे। बालिने ऋषिके आश्रमके पास एक राक्षसको मारा था। राक्षसके रक्तके छींटे ऋषिके ऊपर पड़ गये। इससे ऋषिने शाप दे दिया था कि बालि फिर इस पर्वतपर आयेगा तो मर जायगा। इससे बालि उस पर्वतपर नहीं जाता था। सुग्रीवके विश्वासपात्र मन्त्री श्रीहनुमानजी तथा कुछ और लोग भी सुग्रीवके साथ वहाँ रहते थे।

शबरीजीके आश्रमसे आगे चलकर श्रीराम-लक्ष्मण पंपा सरोवरपर होकर जब ऋष्यमूक पर्वतके पास पहुँचे, तब दूरसे ही उन्हें देखकर सुग्रीवको संदेह हुआ कि कहीं बालिने मुझे मारनेके लिये तो इन्हें नहीं भेजा है। सुग्रीवने हनुमानजीको पता लगानेके लिये भेजा। श्रीहनुमानजीसे श्रीरामका यहीं परिचय हुआ। हनुमानजी श्रीराम-लक्ष्मणको पर्वतपर ले गये और श्रीरामने अग्निको साक्षी करके सुग्रीवसे मित्रता की। श्रीसीताजीको जब रावण आकाशसे

ले जा रहा था, तब सीताजीने पर्वतपर सुग्रीवादिको देखकर एक वस्त्र गिरा दिया था । वह वस्त्र सुग्रीवने श्रीरामको दिया और सीताजीकी खोज करानेका वचन दिया ।

बालिने छोटे भाईकी स्त्रीको छीनकर पाप किया था । भगवान भक्तोंकी रक्षा करते हैं और पापियोंको दंड देते हैं । श्रीरामने सुग्रीवको बालिसे युद्ध करनेको भेजा । बालि बड़ा बलवान था । सुग्रीव उससे जीत नहीं सकते थे, किंतु श्रीरामने एक बाण मारकर बालिका हृदय बींध दिया । बालिके मरनेपर सुग्रीव किष्किन्धाके राजा हुए । बालिके पुत्र अंगदको श्रीरामने कृपा करके युवराजका पद दिलवाया । वर्षा ऋतु प्रारम्भ हो गयी थी, अतः श्रीराम-लक्ष्मणने ऋष्यमूक पर्वतपर ही रहनेका निश्चय किया ।

अनुज समेत गए प्रभु तहवाँ । गोदावरि तट आश्रम जहवाँ ।
आश्रम देखि जानकी हीना । भए बिकल जस प्राकृत दीना

आगे परा गीधपति देखा । सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा ॥

अबिरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम ।
तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम ॥

पुनि सीतहि खोजत द्वौ भाई । चले बिलोकत बन बहुताई ॥
सबरी देखि राम गृहँ आए । मुनि के बचन समुझि जियँ भाए ॥

कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि ।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि ॥

आगें चले बहुरि रघुराया । रिष्यमूक पर्बत निअराया ॥
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा । आवत देखि अतुल बल सींवा ॥
अति सभीत कह सुनु हनुमाना । पुरुष जुगल बल रूप निधाना ॥
पठए बालि होहिं मन मैला । भागौं तुरत तजौं यह सैला ॥

तब हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाइ ।
पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ ॥

तब रघुपति सुग्रीव पठावा । गर्जेसि जाइ निकट बल पावा ॥
पुनि नाना बिधि भई लराई । बिटप ओट देखहिं रघुराई ॥

बहु छल बल सुग्रीव कर हियँ हारा भय मानि ।
मारा बालि राम तब हृदय माझ सर तानि ॥
लछिमन तुरत बोलाए पुरजन बिप्र समाज ।
राजु दीन्ह सुग्रीव कहँ अंगद कहँ जुबराज ॥

जब सुग्रीव भवन फिरि आए । रामु प्रबरषन गिरि पर छाए ॥

लंका-दहन

वर्षा ऋतु बीत जानेपर भी जब सुग्रीवने
ाजीकी खोजका प्रयत्न नहीं किया, तब श्रीरामने
णजीको किष्किन्धा भेजा कि वे सुग्रीवको
ाकर अपनी की हुई प्रतिज्ञाका स्मरण करा दें।
िवको हनुमानजीने स्मरण करा दिया था कि
श्रीसीताजीकी खोजका उद्योग करना चाहिये।

सुग्रीवके आदेशसे हनुमानजीने दूर-दूरके पर्व
एवं वनोंमें रहनेवाले वानरोंको एकत्र किया
सब किष्किन्धा आये और सुग्रीव तथा लक्ष्मणजी
साथ श्रीरामजीके पास आये ।

श्रीरामके आदेशसे सुग्रीवने वानरोंके चार द
बनाकर चारों दिशाओंमें सीताजीकी खोज करनेव
भेज दिया । दक्षिणकी ओर श्रीअंगदजी, जाम्बवन
और हनुमानजी आदि गये । भगवान श्रीरामने
हनुमानजीको चलते समय अपनी अंगूठी सीताजीको
देनेके लिये दे दी, जिससे सीताजीको विश्वास ह
जाय कि हनुमानजी श्रीरामके पाससे ही आये हैं।
दूसरे सब वानरोंके दलोंको तो कोई पता नहीं लगा,
परंतु दक्षिणकी ओर जानेवाले दलको जब प्यास
लगी तो एक गुफामेंसे पानीके पक्षियोंको निकलते
देखकर वे लोग गुफामें घुसे । वहाँ गुफामें आगे
जानेपर एक तपस्विनी मिली । सब बातें सुनकर
उस तपस्विनीने उन लोगोंसे नेत्र बंद करनेको

कहा और तपस्याके बलसे सबको दक्षिण समुद्रके किनारे पहुँचा दिया।

समुद्रके किनारे पहुँचकर सभी वानर एक बार निराश हो गये। वहाँ पर्वतकी गुफासे जटायुके बड़े भाई सम्पाती वानरोंको देखकर निकले। पहले तो वानर भयंकर गीधको देखकर डरे, किंतु परिचय होनेपर सम्पातीने बताया कि समुद्रमें सौ योजन (चार सौ कोस) दूर लंका नगरमें सीताजी अशोकवनमें हैं। लेकिन सौ योजन समुद्र पार करना सरल काम नहीं था। श्रीहनुमानजीको ऋषियोंका शाप था कि जबतक कोई याद न दिलावे, उन्हें अपने बलकी याद नहीं रहती थी। जाम्बवन्तजीने हनुमानजीको उनके बलकी याद दिलाकर लंका जानेको कहा। हनुमानजीने अपना आकार पर्वतके समान कर लिया और वे लंकाके लिये चल पड़े।

देवताओंने नागोंकी माता सुरसाको हनुमानजीकी शक्तिकी परीक्षाके लिये भेजा। सुरसाने जब हनुमानजीको खा जानेके लिये बहुत बड़ा मुख फैलाया, तब हनुमानजीने अपना रूप छोटा कर लिया और उसके मुखमें जाकर तुरंत बाहर निकल आये। सिंहिका नामकी एक राक्षसी समुद्रमें रहती थी। वह आकाशमें उड़नेवाले पक्षियोंकी छाया पकड़कर उन्हें खींच लेती और खा जाया करती थी। उसने हनुमानजीकी भी छाया पकड़ी, किंतु हनुमानजीने समुद्रमें कूदकर उसे मार डाला। वहाँसे वे लंकामें पहुँचे। रात्रिके समय बहुत छोटा रूप बनाकर उन्होंने लंकामें प्रवेश किया। लंका नगरकी रक्षा करनेवाली राक्षसीने पहले तो उन्हें रोका, पर जब उन्होंने एक घूँसा मारकर व्याकुल कर दिया, उसने रास्ता छोड़ दिया।

हनुमानजीने लंकाके सभी घर देख लिये परंतु उन्हें कहीं भी सीताजी नहीं मिलीं। अन्तमें

प्रातःकाल विभीषणजीको रामनामका जप करते देख वे उनके पास आये। विभीषणजीसे श्रीसीताजीका पता मालूम होनेपर श्रीहनुमानजी अशोकवनमें आये और जिस वृक्षके नीचे सीताजी बैठी थीं, उसीपर छिपकर चढ़ गये। जब पहरा देनेवाली राक्षसियाँ दूर चली गयीं, तब हनुमानजीने श्रीरामकी मुद्रिका सीताजीके सामने गिरा दी। मुद्रिका देखकर सीताजीको बड़ा आश्चर्य हुआ। पीछे हनुमानजी नीचे उतर आये। उन्होंने सीताजीको श्रीरामका पूरा समाचार दिया और धैर्य बँधाया।

हनुमानजीने सीताजीकी आज्ञा लेकर अशोक-वनके फल खाना तथा पेड़ोंको तोड़ना प्रारम्भ किया। वे रावणसे मिलकर ही जाना चाहते थे। वनके रक्षक राक्षस दौड़े आये तो हनुमानजीने सेनाके साथ रावणके पुत्र अक्षयकुमारको भी मार दिया। अन्तमें रावणके बड़े पुत्र मेघनादने ब्रह्मास्त्रके

द्वारा हनुमानजीको मूर्छित करके बाँध लिया और रावणकी राजसभामें ले गया।

श्रीहनुमानजीने रावणको बहुत समझाया कि सीताजीको लौटाकर श्रीरामजीसे क्षमा माँगनेपर ही उसका कल्याण होगा। लेकिन रावण भला ऐसी शिक्षा कहाँ माननेवाला था। उसने पहले तो श्रीहनुमानको मार डालनेकी आज्ञा दी, किंतु विभीषणजीने समझाया, दूतको नहीं मारना चाहिये। राक्षसोंने रावणकी आज्ञासे हनुमानजीकी पूँछमें कपड़े लपेटकर तेल-घीसे भिगोया और उसमें अग्नि लगा दी। हनुमानजीने अपना रूप बहुत बड़ा कर लिया। अपनी जलती पूँछसे कूद-कूदकर वे राक्षसोंके घरोंको जलाने लगे। विभीषणके घरको छोड़कर उन्होंने सारी लंका फूँक दी।

लंका जलाकर समुद्रमें पूँछ बुझाया, फिर हनुमानजी श्रीसीताजीके पास गये। सीताजीने उन्हे श्रीरामजीको देनेके लिये अपने सिरमें पहननेकी

रा० भाग २] हनूमानजी लंका जला रहे हैं [पृष्ठ ३२

मणि दी। वहाँसे कूदकर हनुमानजी समुद्रके पार आये और अंगद, जाम्बवंत आदिके साथ भगवान श्रीरामके पास पहुँचकर सीताजीकी दी हुई मणि देकर सब समाचार सुना दिया।

सुनहु नील अंगद हनुमाना। जामवंत मतिधीर सुजाना॥
सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू। सीता सुधि पूँछेहु सब काहू॥
पाछें पवनतनय सिरु नावा। जानि काज प्रभु निकट बोलावा॥
परसा सीस सरोरुह पानी। करमुद्रिका दीन्हि जन जानी॥

चले सकल बन खोजत सरिता सर गिरि खोह।
राम काज लयलीन मन बिसरा तन कर छोह॥

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेहु बलवाना॥
राम काज लगि तव अवतारा। सुनतहिं भयउ पर्वताकारा॥
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चलेउ हनुमाना॥
अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना॥
मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा। देखे जहँ तहँ अगनित जोधा॥
भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा॥
बिप्र रूप धरि बचन सुनाए। सुनत बिभीषन उठि तहँ आए॥
पुनि सब कथा बिभीषन कही। जेहि बिधि जनकसुता तहँ रही॥
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ॥
तरु पल्लव महुँ रहा लुकाई। करइ बिचार करौं का भाई॥

कपि करि हृदयँ बिचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब ।
जनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ ॥

रामचंद्र गुन बरनैं लागा । सुनतहिं सीता कर दुख भागा ॥
मन संतोष सुनत कपि बानी । भगति प्रताप तेज बल सानी ॥
चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा । फल खाएसि तरु तोरैं लागा ॥
रहे तहाँ बहु भट रखवारे । कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे ॥
सब रजनीचर कपि संघारे । गए पुकारत कछु अधमारे ॥

कपि कें ममता पूँछ पर सबहि कहउँ समुझाइ ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ ॥

जातुधान सुनि रावन बचना । लागे रचैं मूढ़ सोइ रचना ॥
पावक जरत देखि हनुमंता । भयउ परम लघु रूप तुरंता ॥
निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारीं । भईं सभीत निसाचर नारीं ॥
देह बिसाल परम हरुआई । मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई ॥
जारा नगरु निमिष एक माहीं । एक बिभीषन कर गृह नाहीं ॥
उलटि पलटि लंका सब जारी । कूदि परा पुनि सिंधु मझारीं ॥

पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि ।
जनकसुता कें आगें ठाढ़ भयउ कर जोरि ॥

मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा । जैसे रघुनायक मोहि दीन्हा ॥
चूड़ामनि उतारि तब दयऊ । हरष समेत पवनसुत लयऊ ॥
नाघि सिंधु एहि पारहि आवा । सबद किलिकिला कपिन्ह सुनावा ॥
चले हरषि रघुनायक पासा । पूँछत कहत नवल इतिहासा ॥

रावण-वध

श्रीसीताजीका समाचार सुनकर श्रीरामने कपिराज सुग्रीवजी तथा पूरी वानरी सेनाके साथ लंका-पर चढ़ाई करनेके लिये यात्रा की। श्रीरामकी सेनामें असंख्य बड़े-बड़े बलवान वानर एवं भालू थे। हनुमानजी, अंगद, जाम्बवंत, नल, नील, द्विविद, मयंद, गय, गवाक्ष आदि प्रधान-प्रधान वीर सेनानायक भी इतने थे कि उनकी गिनती नहीं हो सकती। इस भारी सेनाके साथ श्रीराम-लक्ष्मण समुद्रके किनारे पहुँचे।

वहाँ लंकामें विभीषणजीने रावणको समझाया कि सीताजीको श्रीरामको लौटा देना चाहिये। श्रीरामजी साक्षात् भगवान हैं। उनसे युद्ध करके विजय नहीं मिल सकती। रावणने विभीषणकी बातपर बिगड़कर उन्हें भरी राजसभामें लात मारी और लंकासे निकल जानेको कहा। विभीषण वहाँसे

श्रीरामके पास आये। सुग्रीवजीने तो इस संदेहसे कि विभीषण रावणके भाई हैं और पीछे कुछ गड़बड़ी कर सकते हैं, उन्हें बाँधकर कैद कर लेनेकी बात कही, लेकिन श्रीराम तो शरणागतवत्सल हैं। उन्होंने विभीषणको निर्भय करके अपनी शरणमें ले लिया। उन्हें अपना निजी सहायक बना लिया और वहींपर उन्हें लंकाके राज्यका राजतिलक भी कर दिया।

श्रीरामने विभीषणकी सम्मतिसे तीन दिनतक उपवास करके समुद्रसे प्रार्थना की कि वह उनकी सेनाके लिये मार्ग दे दे। जब प्रार्थनासे कोई लाभ नहीं हुआ, तब श्रीरामने धनुषपर दिव्य बाण चढ़ाया। उस बाणके चढ़ाते ही बाणके तेजसे समुद्रका जल खौलने लगा। अन्तमें समुद्रके देवता डरकर मनुष्यके रूपमें प्रकट हुए। उन्होंने क्षमा माँगी और सेनाके पार होनेका उपाय बताया। श्रीरामकी सेनामें नल और नील बड़े चतुर शिल्पी थे। उन्हें बचपनमें ऋषियोंने शाप दिया था कि उनके फेंके पत्थर

जलमें नहीं डूबेंगे। वानर और भालू बड़े-बड़े पर्वतोंके टुकड़े लाकर देने लगे। नल-नील उन पर्वतशिलाओंपर 'रा' और 'म' लिखकर जलपर जोड़ने लगे। राम-नामके प्रतापसे समुद्रपर पत्थरका बड़ा भारी पुल बन गया। भगवान श्रीरामने वहाँ रामेश्वर नामसे भगवान शंकरकी स्थापना करके शंकरजीकी पूजा की। फिर सारी सेनाके साथ पुलसे समुद्र पार करके वे लंकामें पहुँच गये।

लंका पहुँचकर श्रीरामने पहिले अंगदजीको दूत बनाकर रावणको समझानेके लिये भेजा। जब रावण अंगदजीके समझानेसे भी सीताजीको लौटानेको राजी नहीं हुआ, तब वानर-भालुओंकी सेनाने पर्वत और वृक्ष लेकर लंकाको चारों ओरसे घेर लिया। बड़ा भारी युद्ध छिड़ गया। रोज सहस्रों राक्षस मरने लगे। रावणके पुत्र मेघनादने श्रीलक्ष्मणजीको शक्ति मारकर मूर्छित कर दिया। श्रीहनुमानजीने द्रोण पर्वत ले आकर संजीवनी

नामक जड़ीके द्वारा लक्ष्मणजीको स्वस्थ कर दिया। अन्तमें मेघनाद लक्ष्मणजीके हाथों मारा गया। रावणका एक भाई कुम्भकर्ण छः महीने सोता तथा एक दिन जागता था। वह इतना भारी शरीरका था कि पर्वतके समान जान पड़ता था। रावणने किसी प्रकार उसे जगाया और युद्ध करनेको भेजा। श्रीरामने अपने बाणोंसे कुम्भकर्णका सिर युद्धमें काट दिया और उसके शरीरके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये। सबसे पीछे रावण युद्ध करने आया। राम और रावणका बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। राम-रावणका युद्ध बारह दिन हुआ था। बारहवें दिन श्रीरामके बाणोंसे रावण भी मारा गया।

मर जानेपर शत्रुके प्रति भी सत्पुरुष दयाका ही बर्ताव करते हैं। श्रीरामने विभीषणको आज्ञा दी कि जाकर रावणका अन्तिम संस्कार करो। इसके पश्चात् लक्ष्मणजीने नगरमें जाकर विभीषणका राजतिलक किया। श्रीरामके आदेशसे विभीषण बड़े

सम्मानसे सीताजीको वहाँ लिवा आये। श्रीराम चाहते थे कि अब अग्निमें छिपी असली सीताजी प्रकट हों। इसलिये उन्होंने कहा—रावणके यहाँ इतने दिन रही सीताको मैं स्वीकार नहीं करूँगा। श्रीरामकी इस बातसे सबको बड़ा दुःख हुआ। सीताजीके कहनेपर लक्ष्मणजीने चिता बनाकर अग्नि जलायी। सीताजी उस जलती अग्निमें प्रवेश कर गयीं। उसी समय साक्षात् अग्नि देवता प्रकट हुए। उन्होंने श्रीरामको वास्तविक सीताजीको देते हुए कहा कि श्रीसीताजी सर्वथा पवित्र हैं। अग्नि-परीक्षा हो जानेपर श्रीरामने सीताजीको स्वीकार कर लिया।

वनवासके चौदह वर्ष पूरे होनेवाले थे। श्रीराम जानते थे कि यदि समय पूरा होते ही वे अयोध्या नहीं पहुँचेंगे तो भरतजी प्राण छोड़ देंगे। अतएव श्रीरामकी आज्ञासे विभीषण पुष्पक विमान ले आये। यह विमान कुबेरका था और कुबेरसे रावण छीन लाया था। यह विमान इच्छा-

नुसार चलता था और इतना बड़ा था कि उसमें लाखों व्यक्ति बैठ सकते थे । सुग्रीव, अंगद, हनुमान, जाम्बवंत, विभीषण आदि सेनाके मुख्य-मुख्य लोगोंके साथ श्रीराम सीताजी तथा लक्ष्मणजीके साथ उस पुष्पक विमानमें बैठे । वानरी सेनाको उन्होंने बड़े प्रेमसे अपने-अपने स्थानपर जानेके लिये विदा कर दिया था । वह विमान लंकासे अयोध्याको चल पड़ा ।

तब रघुपति कपिपतिहि बोलावा । कहा चलैं कर करहु बनावा ॥
चला कटकु को बरनै पारा । गर्जहिं बानर भालु अपारा ॥
एहि बिधि जाइ कृपानिधि उतरे सागर तीर ।
जहँ तहँ लागे खान फल भालु बिपुल कपि बीर ॥
उहाँ निसाचर रहहिं ससंका । जब तें जारि गयउ कपि लंका ॥
अवसर जानि बिभीषनु आवा । भ्राता चरन सीसु तेहिं नावा ॥
बुध पुरान श्रुति संमत बानी । कही बिभीषन नीति बखानी ॥
सुनत दसानन उठा रिसाई । खल तोहि निकट मृत्यु अब आई ॥
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा । अनुज गहे पद बारहिं बारा ॥
रावन जबहिं बिभीषन त्यागा । भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा ॥
चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं । करत मनोरथ बहु मन माहीं ॥
बाँधा सेतु नील नल नागर । राम कृपाँ जसु भयउ उजागर ॥

सेन सहित उतरे रघुबीरा। कहि न जाइ कपि जूथप भीरा॥

रिपु बल धरषि हरषि कपि बालितनय बल पुंज।
पुलक सरीर नयन जल गहे राम पद कंज॥

कुंभकरन रन रंग बिरुद्धा। सन्मुख चला काल जनु क्रुद्धा॥
तब प्रभु कोपि तीब्र सर लीन्हा। धर ते भिन्न तासु सिर कीन्हा॥
लछिमन मेघनाद द्वौ जोधा। भिरहिं परस्पर करि अति क्रोधा॥
लछिमन मन अस मंत्र दृढ़ावा। एहि पापिहि मैं बहुत खेलावा॥
छाड़ा बान माझ उर लागा। मरती बार कपटु सब त्यागा॥

निज दल बिचलत देखेसि बीस भुजाँ दस चाप।
रथ चढ़ि चलेउ दसानन फिरहु फिरहु करि दाप॥

रघुपति कोपि बान झरि लाई। घायल भै निसिचर समुदाई॥

खैंचि सरासन श्रवन लगि छाड़े सर एकतीस।
रघुनायक सायक चले मानहु काल फनीस॥

सायक एक नाभि सर सोषा। अपर लगे भुज सिर करि रोषा॥
लै सिर बाहु चले नाराचा। सिर भुज हीन रुंड महि नाचा॥
धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। तब सर हति प्रभु कृत दुइ खंडा॥
आइ बिभीषन पुनि सिरु नायो। कृपासिंधु तब अनुज बोलायो॥
सब मिलि जाहु बिभीषन साथा। सारेहु तिलक कहेउ रघुनाथा॥
सीता रघुपति मिलन बहोरी। सुरन्ह कीन्ह अस्तुति कर जोरी॥
पुनि पुष्पक चढ़ि कपिन्ह समेता। अवध चले प्रभु कृपा निकेता॥

राम-राज्य

श्रीभरतजी अयोध्यामें एक-एक दिन गिन रहे
। उन्होंने दूर-दूरतक समाचार देनेके लिये दूत
।युक्त कर रखे थे। जब केवल एक दिन श्रीराम-
वनवासके चौदह वर्ष पूर्ण होनेको रह गया, तब
रतजीको बड़ी व्याकुलता हुई। लेकिन श्रीरामने
नुमानजीको आगे भेज दिया था। हनुमानजीने
।रतजीको श्रीरामके आनेका समाचार दिया।
म्पूर्ण अयोध्यामें आनन्दका समुद्र मानो उमड़

छोड़ने न लगें यह सोचकर श्रीरामने लक्ष्मणजीको कहा कि 'तुम सीताको वनमें छोड़ आओ।' इच्छा न होनेपर भी बड़े भाईकी आज्ञासे लक्ष्मणजी सीताजीको रथमें बैठाकर ले गये और वनमें छोड़ आये। इससे सीताजीको तो अपार दुःख हुआ ही, श्रीरामको भी बहुत दुःख हुआ। लेकिन प्रजा धर्ममें संदेह करके धर्मसे च्युत न हो, इसके लिये उन्हें यह बड़ा भारी त्याग करना पड़ा। सीताजीको महर्षि वाल्मीकिने देखा। वे उन्हें अपने आश्रममें ले गये। वहाँ सीताजी ऋषिकी पुत्रीकी भाँति रहने लगीं। वे जब वनमें छोड़ी गयीं तो गर्भवती थीं। वहाँ उन्हें कुश और लव नामक दो जुड़वे पुत्र हुए।

श्रीरामने जब अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया तो लव-कुशने अश्वमेधका घोड़ा पकड़ लिया। घोड़ेकी रक्षा शत्रुघ्नजी तथा बहुतसे सैनिक कर रहे थे। युद्धमें लव-कुशने शत्रुघ्नजी तथा

सैनिकोंको हरा दिया और हनुमानजी तथा सुग्रीवको बाँधकर अपनी माताके पास ले गये । सीताजीने हनुमान तथा सुग्रीवको बन्धनसे छुड़ा दिया ।

महर्षि वाल्मीकिने लव-कुशको पूरी रामायण पढ़ा दी थी । उसे वे बड़े मधुर स्वरसे गाते थे । ऋषिकी आज्ञासे अयोध्या जाकर वे रामायण गाते हुए घूमने लगे । श्रीरामजीने उन्हें बुलवाया और सबके साथ बैठकर उनसे रामायण सुनी । सबको पता लग गया कि वे श्रीरामके पुत्र हैं । अन्तमें श्रीरामने सीताजीको बुलवाकर सबके सामने अपनी पवित्रताके लिये शपथ लेनेको कहा । सीताजीने सबके सामने कहा—'यदि मैं सच्ची पतिव्रता होऊँ तो पृथ्वी माता मुझे स्थान दें ।' उनके यह कहते ही पृथ्वी फट गयी । उसमेंसे सोनेका सिंहासन लिये पृथ्वी देवी प्रकट हुईं । उन्होंने सीताजीको सिंहासनपर बैठा लिया और [illegible]

गयीं ।

० भाग १]   रामदरबारमें लव-कुश रामायण गा रहे हैं [पृष्ठ

स्वजन-सम्बन्धीको त्याग देना भी एक प्रकारका प्राणदंड ही है । बड़े धर्मसंकटमें पड़कर श्रीरामको लक्ष्मणसे कहना पड़ा कि 'मैंने तुम्हें त्याग दिया ।'

श्रीलक्ष्मणजी बड़े भाईसे त्यागे जाकर जीवित नहीं रह सकते थे । उन्होंने सरयूजीके किनारे जाकर आसन लगाया और योगके द्वारा वे भगवानके धाम चले गये । अब श्रीरामने घोषणा करा दी कि वे अपने दिव्य धाम जा रहे हैं । जो भी उस दिन सरयूमें स्नान करेगा, वह भगवानके साथ उनके धामको जायगा । अयोध्याके सभी स्त्री-पुरुषोंने यहाँतक कि वहाँके पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़ेतकने सरयूमें स्नान किया । स्नान करते ही सबके शरीर दिव्य हो गये और वे भगवानके लोकसे आये विमानों-पर बैठकर भगवान श्रीरामके साथ ही उनके दिव्य धाम साकेतको चले गये ।

भगवान श्रीरामचन्द्रजीकी जय !

श्रीरामचन्द्रने मर्यादाकी रक्षाके लिय
सबके सामने रखा।

इस घटनाके कुछ दिनों बाद एक
देवता मुनिके वेशमें श्रीरामके पास यह
कि भगवानके अपने दिव्यलोक जाने
गया है। भगवान श्रीरामने कालसे
करनेके लिये लक्ष्मणजीको पहरेपर ख
और कह दिया कि 'इस समय मेरे पास
उसे मैं प्राणदंड दूँगा।' लेकिन उसी
मुनि पहुँचे। उन्होंने लक्ष्मणजीको श्री
तुरंत जाकर अपने आनेकी सूचना दें
दुर्वासा बड़े क्रोधी हैं। उनकी बात
वे शाप दे देते। इससे लक्ष्मणजीने जाकर
सूचना दी। भगवान श्रीरामने आकर
स्वागत-सत्कार किया। भगवान श्री
वचनको झूठा नहीं होने देना चाहते
लक्ष्मणजीको प्राणदंड भी नहीं दे सकते

२—निषादराज गुह भरतजीका मित्र था। उसने भरतजीको समझाया कि वे अयोध्याका राज्य करें।

३—भरतजी चित्रकूटसे लौटकर भी अयोध्यामें नहीं रहे। वे नन्दिग्राममें रहकर तपस्या करने लगे।

४—श्रीरामके संकेतसे लक्ष्मणजीने शूर्पणखाके नाक-कान काटे थे।

५—श्रीरामसे शत्रुता करके उनके हाथों मृत्यु पानेके लिये रावणने सीताजीका हरण किया।

६—बालि और सुग्रीव जन्मके ही शत्रु थे और एक दूसरेको मार देनेकी घातमें रहते थे।

७—हनुमानजीने रावणसे मिलनेके लिये उसका अशोकवन उजाड़ा और राक्षसोंको मारा।

८—विभीषणको रावणने लात मारकर लंकासे

निकाल दिया था। वे जान-बूझकर विपक्षमें नहीं आये थे।

९—श्रीरामने रावणके मरनेपर उसका अन्तिम संस्कार विभीषणसे कहकर करवाया।

१०—रामराज्यमें कोई पापी नहीं था। कोई रोगी, दरिद्र या दुखी नहीं था।

११—लव-कुशका जन्म अयोध्यामें हुआ था। उस समय बहुत बड़ा उत्सव किया गया।

१२—श्रीराम सभी अयोध्याके प्राणियोंको अपने साथ अपने दिव्यलोक ले गये।

उत्तर ठीक और गलत

१—गलत, २—गलत, ३—ठीक, ४—ठीक, ५—ठीक, ६—गलत, ७—ठीक, ८—ठीक, ९—ठीक, १०—ठीक, ११—गलत, १२—ठीक।